Approved by the Text-Book Committee, Madras, for Class use. Vide page 206, Fort St. George Gazette, Part I B, Supplement, dated 30th April 1940.

हिन्दी - माधुरी

भाग—१



प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा,

मद्रास.

 [दाम १० आने.

हिन्दी प्रचार पुस्तकमाला—पुष्प सं. ३९.

तीसरा संस्करण—नवंबर १९४०.

मुद्रक
हिन्दी प्रचार प्रेस,
त्यागरायनगर, मद्रास.

दो शब्द

इस किताब में हिन्दी के कुछ मशहूर लेखकों के चंद लेखों का संग्रह है। यह संग्रह सभा की राष्ट्र-भाषा परीक्षा के विद्यार्थियों की श्रेणी को नज़र में रखकर किया गया है। आशा है यह संग्रह हिन्दी प्रेमियों को पसन्द आयगा।

हमने जिन लेखकों की रचनाओं का इस पुस्तक में संग्रह किया है, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करना हम अपना फ़र्ज़ समझते हैं।

पाठ के आरम्भ में विद्यार्थियों के उपयोग के लिये लेखकों का परिचय तथा पाठ के अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ भी दिये गये हैं।

—प्रकाशक

विषय-सूची



हिन्दी माधुरी

मुझसे सब अच्छे

श्री घनश्यामदास बिड़ला

[इस लेख के लेखक श्री घनश्यामदास जी बिड़ला भारत के एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। आप एक बहुत बड़े व्यापारी हैं। आप पिलानी (जयपुर) के रहनेवाले हैं और मारवाड़ी समाज के भूषण हैं। उदारता और दान-वीरता आपके परिवार की संपत्ति है। आपके दानों से भारत की सैकड़ों राष्ट्रीय एवं धार्मिक संस्थाएँ चल रही हैं। आप धन से ही नहीं, बल्कि तन और मन से भी देश की सेवा में लगे रहते हैं। आप अखिल भारतीय हरिजन-संघ के कई साल तक सभापति रह चुके हैं। आप अर्थ-शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता हैं। आपके विचार बहुत ही उच्च और परिष्कृत हैं, और यह लेख उसी उच्च विचार का प्रमाण है। आपको हिन्दी प्रचार से काफ़ी प्रेम है। आपने दक्षिण में हिन्दी प्रचार के लिए काफ़ी सहायता पहुंचाई है।]

मुझे सवेरे टहलने की आदत है। प्रातःकाल की शुद्ध हवा मनुष्यों को नया जीवन देती है। जब-जब मैं घर पर रहता हूँ, सवेरे का भ्रमण एक प्रकार का नियम-सा हो गया है। एक रोज़ सवेरे टहलने निकला तो वायु की परमार्थ-वृत्ति पर विचार करने लगा।

पश्चिमी हवा चल रही थी। मैंने सोचा, यह वायु कितने परिश्रम के बाद यहाँ पहुँची होगी! कहाँ से चली, कितना उपकार

किया, इसका अन्दाज कौन लगावे? भारत का पश्चिमी सागर यहाँ से करीब छः सौ मील की दूरी पर होगा, उसके आगे अफ़्रीका तक केवल निर्जन समुद्र ही समुद्र है। सम्भवतः उससे भी पश्चिम और पश्चिमोत्तर के प्रदेशों से पहाड़ियों, नदियों, समुद्रों, मनुष्यों, जीवजन्तुओं को जीवन देती हुई पवन यहाँ पहुँची होगी; और अब यहाँ के लोगों को सुख देती हुई, अपने कर्तव्य-पालन के लिये, शान्त भाव से पूर्व प्रदेशों की ओर अग्रसर होगी।

मैंने सोचा, यह हवा इतनी सेवा करती है फिर भी अख़बारों में इसकी चर्चा क्यों नहीं आती? हवा से मैंने कहा—हवा, तुम संसार का इतना उपकार करती हो; किन्तु तुम्हारी सेवा की ख़बर मैं अख़बारों में कभी नहीं पढ़ता। तुमको चाहिये कि जो थोड़ी-सी बात करो, उसको बढ़ा-चढ़ा के अख़बारों में छाप दिया करो।

हवा ने कहा—कौन-सा अख़बार अच्छा है?

मैंने कहा—हिन्दी-अंग्रेज़ी के बहुत-से अख़बार हैं, सभी में अपनी प्रशंसा छपाया करो।

हवा ने पूछा—क्या सूर्य-लोक एवं चन्द्रलोक में भी तुम्हारे यहाँ के अख़बार जाते हैं?

मैंने कहा—वहाँ तो नहीं जाते।

हवा ने मेरी मूर्खता पर हँस दिया और कहा—तुम पक्के कूप-मण्डूक हो, तुम्हारे लिये थोड़े-से लोग ही ब्रह्माण्ड हैं। मैंने

तो प्राणिमात्र की सेवा का व्रत ले रखा है, और मेरा अख़बार है ईश्वर का हृदय। वहाँ सब ख़बरें आप-से-आप पहुँचती हैं। भली-बुरी सभी बातें वहाँ छपती रहती हैं, किसी बात का वहाँ पक्ष-पात नहीं। किसी के कहने से वहाँ कोई ख़बर नहीं छापी जाती, सच्ची ख़बरें वहाँ स्वयं छप जाती हैं। मैं तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं कि विज्ञापनबाज़ी के दलदल में फँस जाऊँ। निःस्वार्थ भाव से चुप-चाप प्रणिमात्र की सेवा करना, यही मेरा धर्म है और मेरे स्वामी को भी यही प्रिय है। अच्छा हो कि तुम भी मेरा अनुकरण करो।

हवा की यह स्पष्टोक्ति मुझे बड़ी बुरी लगी। मैं और हवा-जैसी जड़ वस्तु का अनुकरण करूँ! मन में आया कि एक व्याख्यान ही झाड़ दूँ। अख़बारों में तो उसका अतिरञ्जित वर्णन छप ही जायगा; परन्तु पवन को तो 'लगन लगी पद पावन की'—उसे मेरा व्याख्यान सुनने को फ़ुरसत कहाँ? वह तो अपना गीत गाती हुई शीघ्रता से चल निकली।

तब मैंने अपना सारा क्रोध एक ऊँट पर ढाल दिया। बात यह हुई कि रास्ते में एक ऊँट महाशय, अपनी थकान उतारने के लिये, हाथ-पाँव पीट-पीटकर धूल उछाल रहे थे। मैंने गर्द से तंग आकर, क्रोध में, ऊँट से कहा—तुम बड़े गँवार हो, पशु तो हो ही; किन्तु तुम्हें तमीज़ भी बिलकुल नहीं है। हम लोग जिन रास्तों से होकर निकलते हैं, उनमें ग़रीब मनुष्य भी किनारे खड़े

होकर झुक के प्रणाम करते हैं। हम जब-जब टहलने जाते हैं, तब-तब हमारे लट्ठधारी नौकर रास्ते में चलनेवालों का नाकों दम कर देते हैं। तुमने हमें झुककर प्रणाम करना तो दूर रहा, उलटा धूल उछालना शुरू कर दिया। इससे मालूम होता है कि तुम गँवार भी हो और धृष्ट भी।

इस पर ऊँट ने अपना व्यायाम तो बन्द कर दिया; पर मेरी बात को सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ा। वह बोला—तुम मूर्ख तो हो ही, साथ ही अभिमानी भी हो। अभी-अभी तुम पवन को उपदेश देने की धृष्टता कर रहे थे। पवन तो आदर्श सेवक है, उसने तुम्हें कुछ नहीं कहा। कहीं मुझे उपदेश देने की धृष्टता न कर बैठना। बस, यह समझ लो कि मुझसे तुम बहुत गये-बीते हो।

मैंने कहा—ऊँट, तू पशु होकर मनुष्य को उपदेश देने चला है! मुझे तेरी बुद्धि पर तरस आता है।

ऊँट की मुखाकृति गम्भीर हो उठी। आँखों में तेज चमकने लगा। अपने नथुनों को फटकारकर उसने कहा—क्या केवल मनुष्य-देह मिलने से ही मनुष्य अपने को मनुष्य कहने का अधिकारी हो जाता है? क्या नादिरशाह, महमूद गज़नवी और ऐसे-ऐसे अनेक पापी अपने को मनुष्य कहने के अधिकारी हो सकते हैं? और उन्हें मनुष्य-देह मिल गई, इस बित्ते पर क्या वे अपने को हम पशुओं से ऊँचा समझ सकते हैं? यदि तुम ऐसा मानते हो तो तुम्हारी बुद्धि को शत बार धिक्कार है।

मैं कुछ ठंडा पड़ गया। मैंने कहा—भाई ऊँट, उन पापी मनुष्यों की बात न करो। वे तो नर-राक्षस थे; परन्तु मैं तो ऐसा नहीं हूँ। मैं तो अपने लिये कह सकता हूँ कि अपनी समझ में मैं तुमसे कहीं अच्छा हूँ।

ऊँट फिर हँस पड़ा। कहने लगा—अच्छा, ज़रा बता तो दो, तुममें मुझसे कौन-सी अच्छी बात है?

मैं सोचने लगा, क्या बताऊँ? आख़िर धन के अलावा मुझमें कौन-सी बात है जिसका मैं गर्व कर सकूँ। अत्यन्त साहस करके मैंने दबी ज़बान से कहा—अच्छा तो देखो, तुम जानते हो, मैं त्याग से कितना प्रेम करता हूँ। सादगी से रहता हूँ, खादी पहनता हूँ। यह क्या कुछ कम है?

ऊँट ने गर्व के साथ कहा—इसमें गर्व करने की क्या बात है? मुझे देखो, मैं तो कुछ भी नहीं पहनता।

मैंने कहा—और सुनो, मैं भोजन भी सादा करता हूँ, मिर्च-मसाले नहीं खाता।

ऊँट ने कहा—अच्छा त्याग किया! मुझे तो देखो, कि केवल सूखी पत्तियाँ चबाकर ही रह जाता हूँ।

मैंने कहा—मैंने गृहस्थाश्रम का भी त्याग कर दिया है।

ऊँट ने कहा—क्यों इतना अभिमान करते हो? मैंने तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश ही नहीं किया। सो, मैं तो बाल-ब्रह्मचारी हूँ।

मैंने कहा—मुझमें ईर्ष्या-द्वेष अधिक नहीं। झूठ बहुत कम बोलता हूँ, सो भी अनजान में। रोष भी कम आता है।

ऊँट ने कहा—इसमें कौन-सी बड़ी बात है? मुझमें न ईर्ष्या है न द्वेष, और न क्रोध। झूठ तो जीवन में कभी बोला ही नहीं।

मैंने कहा—मुझमें सेवा-वृत्ति है।

ऊँट ने कहा—उसका नमूना तो हम रोज़ देखते हैं। कल एक पाला बछड़ा रो रहा था, क्योंकि उसकी माँ का दूध नित्य-प्रति तुम पी लेते हो, बछड़ा तृण खाकर जीवन निर्वाह करता है। उस दिन, सुनते हैं, तुमने एक घोड़े को भी दौड़ाकर मार डाला। शहर के तमाम घोड़ों में इसी बात की चर्चा थी। उनकी एक विराट् सभा हुई थी। उसमें मृतक के प्रति सहानुभूति और तुम्हारे प्रति घृणासूचक प्रस्ताव भी पास किये गये थे। न मालूम, कितने ऊँट, घोड़ों और बैलों को तुमने इस प्रकार कष्ट दिया है, कितने पशुओं को लँगड़ा किया है,—कितनों को अपनी मोटर के धक्के से गिराया है! अच्छा सेवा का दम भरते हो! मुझे देखो, न कपड़े पहनता हूँ, न जिह्वा-स्वाद से नाममात्र भी संबन्ध रखता हूँ। केवल रूखे पत्ते खाता हूँ। फिर भी बेंत, कोड़े और ठोकरें खाता हुआ नम्रता-पूर्वक तुम लोगों की सेवा करता हूँ। इसी को सेवा-व्रत कहते हैं। तुम लोगों से सेवा कैसे सम्भव है? पहनने के लिये तुम्हें कीमती कपड़े चाहिये, खाने के लिये सुस्वादु भोजन,

सेवा के लिये नौकर, रहने के लिये महल, टहलने के लिए अच्छे वाहन या मोटर। मुसाफिरी करते हो तो मनों सामान और सामग्रियाँ साथ में चलती हैं। तुम्हारे लिये बोझ ढोना पड़ता है हमको। अकाल पड़ता है तो हम लोग भूखों मरते हैं, पीने को पानी नहीं मिलता; परन्तु तुम्हारे बगीचों की फुलवारी को सरसब्ज़ रखने में गाँव भर के बैलों की शान्ति नष्ट हो जाती है। तुम्हारा मनुष्य-समाज इस विषय में बड़ा पतित है। शर्म की बात है, कि इस पर भी तुम अपने को हमसे श्रेष्ठ समझते हो।

ऊँट की बात मेरे हृदय में चुभ गयी। मुझे ग्लानि होने लगी। अन्तरात्मा कहने लगी—मूर्ख, तू ऊँट से भी गया-बीता है!

पास में खड़े हुए करीर के वृक्ष ने सिर हिलाकर कहा—ऊँट सच कहता है।

तब मैंने कहा—प्रभो, मुझे ऊँट-जितना आत्म-बल तो दे दो।

सहसा आकाश में बिजली चमकी, मेघ गरजा। सुननेवालों ने सुना, कहनेवालों ने कहा—

मो सम कौन कुटिल, खल, कामी?
जेहि तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमक-हरामी।
मो सम कौन कुटिल, खल कामी?

किसी ने कहा—कहनेवाला और सुननेवाला दोनों एक हैं।

किसी ने कहा—यह अन्तर्नाद है।

मैंने चिल्लाकर कहा—मुझसे सब अच्छे।

कठिन शब्दों के अर्थ

परमार्थवृत्ति - परोपकारी स्वभाव।
अग्रसर होना - आगे बढ़ना।
कूप-मंडूक - संकीर्ण, कम जाननेवाला।
ब्रह्माण्ड - सारी दुनिया (भूगोल-खगोल के साथ)।
दलदल - कीचड, झंझट।
अनुकरण - नकल।
स्पष्टोक्ति - साफ़ साफ़ कहना।
जड़ - जिसमें जान न हो।
अतिरंजित - बढ़ाचढ़ा हुआ।
"लगन लगी पदपावन की - भगवान को प्राप्त करने की धुन लगी थी।
गर्द - धूल।
तमीज़ - सभ्यता।
लट्ठधारी - लाठी हाथ में लिये हुए।
नाकों दम करना - परेशान करना।
धृष्टता - ढिठाई।
तरस - दया।
मुखाकृति - चेहरा।
बिते पर - सहारे, बल पर।
दबी ज़बान से - धीरे से, नम्रता से।
रोष - क्रोध।
दम भरना - ढोंग करना।
वाहन - सवारी।
सरसब्ज़ - हरा-भरा।
सहसा - एकाएक।
"मो सम······" - मेरे समान नीच और दुष्ट कौन है? जिस भगवान ने शरीर दिया, उसी को हमने भुला दिया।

संसार एक रंगभूमि है

डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा

[वर्माजी एक बहुत बड़े डाक्टर थे। विदेशी युनिवर्सिटियों की बहुतसी डिग्रियां भी आपके पास थीं। पर चिकित्सा और रोग सम्बन्धी आपने सब पुस्तकें हिन्दी में लिखी हैं। पत्रिकाओं में भी आपके लेख निकला करते थे। डा० साहब ने अपने 'स्वास्थ्य और रोग' नामक बड़ी उपयोगी और कीमती पुस्तक की कई प्रतियां दक्षिण भारत के पुस्तकालयों को दान में दी थीं। दुःख है कि अब डा० साहब नहीं रहे।]

संसार एक रंगभूमि है। इसमें सदा ही युद्ध हुआ करते हैं। क्षण-भर को भी शान्ति नहीं। शान्ति कैसे हो? शान्ति तो मृत्यु का चिह्न है। केवल मुर्दा ही शांत और चुप-चाप पड़ा रहता है। शान्ति जीवन का लक्षण है ही नहीं। जीवन का मुख्य लक्षण है गति या अशान्ति। चाहे हम सोवें, चाहे जागें; हमारे शरीर में गति होती रहती है, हृदय धड़कता रहता है। शरीर की नन्हीं से नन्हीं सेल भी क्षण भर के लिये स्थिर नहीं रहती। परमाणुओं और अणुओं में एक विशेष प्रकार का आन्दोलन हर समय रहता है। तोड़-फोड़ और मरम्मत का काम हुआ करता है। पुरानी चीज़ों की जगह नयी चीज़ें बनती रहती हैं, अर्थात् हमारे शरीर में एक प्रकार की अशांति या हलचल रहती है।

इस रंगभूमि में प्राणियों की लड़ाई रोज़मर्रा देखी जाती है। कुत्ते आपस में एक हड्डी के टुकड़े के पीछे लड़ते हैं; कुत्ता मुर्गी के पीछे झपटता है, बिल्ली चूहे की ताक में बैठी रहती है; चील और बाज झट मौका देखकर छोटी चिड़ियों या मछली या चूहे को उठा ले जाते हैं; मोर साँप को पकड़ लेता है; भेड़िये और शेर झट बकरी को उठा ले जाते हैं। मनुष्य हाथी, शेर, ह्वेल इत्यादि जानवरों का शिकार खेलता है। साहब लोग एक दिन में हज़ारों चिड़ियों को मार डालते हैं—ये और ऐसी-ऐसी और बातें युद्ध नहीं तो क्या हैं? युद्ध में केवल शारीरिक बल और बड़ा शरीर ही काम नहीं आता; अस्त्र, शस्त्र, बुद्धि इत्यादि भी काम में आती हैं। मनुष्य शेर से कमज़ोर है; मगर बुद्धि से काम लेता है और शस्त्रों की सहायता से न केवल शेर बल्कि हाथी और ह्वेल तक को मार डालता है। शेर के दाँत और उसके नाख़ून उसकी सहायता करते हैं; सर्प का विष उसको अपने से कहीं बड़े-बड़े जानवरों पर हमला करने और विजय पाने में मदद देता है। हाथी अपने बोझ से शेर को दबा देता है। चतुराई और मक्कारी विजय पाने में बहुत सहायता देती है। आँख बचाकर चुपके से हमले किये जाते हैं। हमला करनेवाला ऐसे समय की ताक में रहता है कि जब दूसरा व्यक्ति कम तैयार हो।

जो कुछ जानवर करते हैं, वही मनुष्य और मनुष्यों के जत्थे, जिनको क़ौमें कहते हैं—करते हैं। असभ्य हबशी लोग अपने

दुश्मन को न केवल मार ही डालते हैं; बल्कि जानवरों की तरह उसको खा भी जाते हैं। एक जत्था दूसरे जत्थे को हराने और अपने अधीन रखने की कोशिश करता है। एक देश दूसरे देश के रहनेवालों पर हमला करके उनका माल-ताल छीनने का यत्न करते हैं। एक रंग के आदमी दूसरे रंग के आदमियों को नीचा समझते हैं और लड़कर उनको अपना गुलाम बनाते हैं या उनका नाश करते हैं। जिसके पास ज़्यादा अक़्ल है, जिसके पास अधिक शारीरिक बल है, जिसके पास भोजन की सामग्री है, जिसके पास हथियार हैं, जिसके पास हिम्मत और हियाव है, जिनकी तादाद ज़्यादह है—वही क़ौम विजय पाती है और जब विजय पा लेती है, तब दूसरी जाति के नाश की भरपूर कोशिश करती है। 'अपना' और 'पराया' यह स्वाभाविक है। बहुत से ऋषि, मुनि, साधु, सन्त, रसूल, नबी, इस दुनिया में आये और गये; मगर इस लड़ाई को कोई न मिटा सका। यह युद्ध प्राकृतिक और स्वाभाविक है। स्वाभाविक—प्राकृतिक नियमों को कौन मिटा सकता है?

जब से मनुष्य पैदा हुआ है—वह हमेशा आपस में एक दूसरे से और अन्य प्राणियों से युद्ध करता चला आया है। हबशी क़ौमें यदि लड़ती-भिड़ती हैं तो सभ्य क़ौमें भी वैसा ही करती हैं। महाभारत के समय सभ्य भारतवासियों ने क्या किया; सभ्य

यूनानवालों ने क्या किया; रोमवालों ने कैसे-कैसे युद्ध किये! फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ों में; अंग्रेज़ों और अमेरिकावालों में बहुत दिनों तक युद्ध हुए; फ्रेंच रिवोल्यूशन की लड़ाइयाँ और १९१४–१८ का महायुद्ध अभी किसी को भूले नहीं। जिन क़ौमों ने इन लड़ाइयों में भाग लिया, क्या वे अपने आपको सभ्य नहीं कहतीं? ऊपर की बातों से मालूम पड़ता है कि इसमें सन्देह नहीं कि यह संसार एक रंग-भूमि है, यहाँ सब प्राणी एक दूसरे से लड़ते रहते हैं। लड़ाई का जहाँ तक सम्बन्ध है, सभ्य और असभ्य—सभी बराबर हैं।

कठिन शब्दों के अर्थ

रंगभूमि - नाटक खेलने की जगह, खेल-तमाशे की जगह।
आन्दोलन - उथल-पुथल।
रोज़मर्रा - सर्वदा, हमेशा।
मक्कारी - धोखेबाज़ी, कपट।
आँख बचाकर - छिपकर।
हमला - आक्रमण।
ताक - खोज, निशाना।
जत्थे - झुंड, समूह।
गुलाम - दास।
हियाव - साहस।
रसूल - खुदा तक पहुँचा हुआ, फ़क़ीर।
नबी - ईश्वर का दूत, पैग़म्बर।

साइकिल की सवारी

श्री सुदर्शन

[प्रेमचन्द जी के बाद हिन्दी-कहानी लेखकों में श्री सुदर्शन जी का नाम ही लिया जाता है। आप हिन्दी उर्दू दोनों के सफल कहानीकार हैं। आपने कई नाटक तथा कहानियाँ लिखी हैं। आपकी भाषा सरल हिन्दुस्तानी होती है। आप पंजाब के रहनेवाले हैं। कलकत्ते की न्यू थियेटर्स सिनेमा कम्पनी में कथा-लेखक का कार्य भी कर चुके हैं। आपकी यह कहानी हास्यरस का सुंदर नमूना है।]

[१]

भगवान ही जानता है कि जब मैं किसी को साइकिल की सवारी करते या हारमोनियम बजाते देखता हूँ, तब मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है! सोचता हूँ, भगवान ने ये दोनों विद्यायें भी ख़ूब बनाई हैं। एक से समय बचता है, दूसरी से समय कटता है; मगर तमाशा देखिये, हमारे प्रारब्ध में कलियुग की ये दोनों विद्यायें नहीं लिखी गयीं। न साइकिल चला सकते हैं; न बाजा बजा सकते हैं। पता नहीं, कब से यह धारणा हमारे मन में बैठ गयी है कि हम सब कुछ कर सकते हैं; मगर ये दोनों काम नहीं कर सकते।

शायद १९३२ की बात है कि बैठे-बैठे ख़्याल आया, चलो साइकिल चलाना सीख लें। और इसकी शुरूआत यों

हुई कि हमारे लड़के ने चुपचुपाते में यह विद्या सीख ली, और हमारे सामने से सवार होकर निकलने लगा। अब आपसे क्या कहें कि लज्जा और घृणा के कैसे-कैसे ख़्याल मेरे मन में उठे। सोचा, भाई क्या हमीं ज़माने भर में फिसड्डी रह गये हैं। सारी दुनिया चलाती है; ज़रा-ज़रा-से लड़के चलाते हैं। मूर्ख और गँवार चलाते हैं! हम तो परमात्मा की कृपा से फिर भी पढ़े-लिखे हैं। क्या हमीं नहीं चला सकेंगे? आख़िर इसमें मुश्किल क्या है? कूदकर चढ़ गये और ताबड़-तोड़ पाँव मारने लगे। और जब देखा कि कोई राह में खड़ा है, तब टन-टन करके घंटी बजा दी। न हटा तो क्रोधपूर्ण आँखों से उसकी तरफ़ देखते हुए निकल गये। बस यही तो सारा गुर है इस लोहे के घोड़े की सवारी का! बस, महाराज! हमने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो जाय, साइकिल चलाना जरूर सीखेंगे।

हम चाहते थे, घर में किसी को कानोंकान ख़बर न हो, और हम साइकिल-सवार बन जायँ। और इसके बाद जब इस विद्या के पंडित हो जायँ, तब एक दिन जहाँगीर के मक़बरे को जाने का निश्चय करें। घरवालों को ताँगे में बिठा दें और कहें, तुम चलो; हम दूसरे ताँगे में आते हैं। और जब वे चले जायँ, तब साइकिल पर सवार होकर उनको रास्ते में जा मिलें। हमें साइकिल पर सवार होकर देखकर उन लोगों की क्या हालत होगी! हैरान हो जायँगे, दंग रह जायँगे; आँख मलामलकर देखेंगे कि

कहीं कोई और तो नहीं है! परन्तु हम गर्दन टेढ़ी करके दूसरी तरफ़ देखने लग जायँगे, जैसे हमें कुछ मालूम ही नहीं है, जैसे यह सवारी हमारे लिये साधारण बात है।

बस, हमने बाज़ार जाकर ज़म्बक के दो डिब्बे ख़रीद लिये कि चोट लगने पर उसका उसी समय इलाज किया जा सके। इसके बाद बाहर जाकर एक खुला मैदान तलाश किया ताकि दूसरे दिन से साइकिल-सवारी का काम शुरू किया जा सके।

[२]

अब यह सवाल हमारे सामने था कि अपना उस्ताद किसे बनावें। पहले तो यह सोचा कि बिना उस्ताद के सीखो। हमारे लड़के ने क्या किसी की शागिर्दी की थी? कहता था, मैंने तो ऐसे ही सीख लिया। एक बार गिरा, दो बार गिरा, तीसरी बार गिरने की नौबत ही नहीं आयी; मगर फिर सोचा कि वह लड़का है, हम तो लड़के नहीं हैं। आदमी जो काम सीखना चाहे, क़ायदे से सीखे; नहीं तो नुकसान उठाता है। इसलिये यह तो निश्चय कर लिया कि किसी को उस्ताद बनावें; मगर यह निश्चय नहीं कर सके कि किसे बनावें। इसी उधेड़बुन में बैठे थे कि तिवारी लक्ष्मीनारायण आ गये और बोले—"क्यों भाई, हो जाय एक बाजी शतरंज की! ज़रा आवाज़ दो लड़के को। शतरंज और मुहरे उठा लावे।"

हमने सिर हिलाकर जवाब दिया—"नहीं साहब। आज तो जी नहीं चाहता।"

तिवारी ने अपने घुटे हुए सिर से टोपी उतारकर हाथ में ले ली और सिर पर हाथ फेरकर बोले—"हम तो इतनी दूर से चलकर आये हैं कि एक-दो बाज़ियाँ खेलेंगे, तुमने कह दिया, जी नहीं चाहता!"

"यदि जी न चाहे तो कोई क्या करे?"

यह कहते-कहते हमारा गला भर आया। तिवारीजी का दिल पसीज गया। हमारे पास बैठकर बोले—"अरे भाई, मामला क्या है?"

हमने कहा—"तिवारी भैय्या, क्या कहें? सोचा था, लाओ, साइकिल की सवारी ही सीख लें; मगर अब कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई देता जो हमारी सहायता करे। बताओ, है कोई ऐसा आदमी तुम्हारे ख़्याल में?"

"आदमी तो ऐसा है एक; मगर वह मुफ़्त नहीं सिखायेगा। फ़ीस लेगा। दे सकोगे?"

"कितने दिन में सिखा देगा?"

"यही दस-बारह दिनों में!"

"और फ़ीस क्या लेगा हमसे?"

"औरों से पचीस लेता है। तुमसे बीस ले लेगा हमारी ख़ातिर!"

हमने सोचा—दस दिन में सिखायेगा, और बीस रुपये फ़ीस लेगा। दस दिन—बीस रुपये। बीस रुपये—दस दिन। अर्थात् दो रुपये रोज़ाना, अर्थात् साठ रुपये महीना, और वह भी एक-दो घंटे के लिये। ऐसी तीन-चार ड्यूटियाँ मिल जायँ तो ढाई-तीन सौ रुपया महीना हो गया। हमने तिवारीजी से तो इतना ही कहा कि जाकर मामला तय कर आओ; मगर जी में ख़ुश हो रहा था कि साइकिल चलाना आ जाय तो एक ट्रेनिंग स्कूल खोल दूँ, और तीन-चार सौ रुपया मासिक कमाने लगूँ।

थोड़ी देर में तिवारीजी ने बाहर से आवाज़ दी। हमने जाकर देखा, उस्ताद साहब खड़े हैं। भद्दी-सी शक्ल-सूरत, मोटी गर्दन, गले में काला तागा, मैली धोती, पाँव में कसूरी जूता, जो पहलवान लोग पहनते हैं, छोटी-छोटी आँखें। पहले तो मन में आया, कह दें, हमें यह उस्ताद पसन्द नहीं; पर फिर सोचा, हमें साइकिल सीखना है, हमें इनकी शक्ल-सूरत से क्या काम। यह सोचकर हमने शरीफ़ विद्यार्थियों के समान श्रद्धा से हाथ बाँधकर प्रणाम किया और चुपचाप खड़े हो गये।

तिवारीजी—"यह तो बीस पर मानते ही न थे। बड़ी

मुश्किल से मनाया है; पर पेशगी लेंगे। कहते हैं पीछे कोई नहीं देता।"

हम—"अरे भाई हम देंगे। दुनिया लाख बुरी है; मगर फिर भी भले आदमी से खाली तो नहीं है? यह बीस रुपया तो चीज़ ही क्या है? हम अपना धर्म लाखों के लिये भी न गँवायेंगे। बस, एक बार साइकिल चलाना सिखा दें, फिर देखें, हम इनकी क्या-क्या सेवा करते हैं।"

मगर उस्ताद साहब नहीं माने, बोले—"फ़ीस पहले लेंगे।"

हम—"और यदि आपने नहीं सिखाया तो····"

उस्ताद—"नहीं सिखाया तो फ़ीस लौटा देंगे।"

हम—"और यदि फ़ीस नहीं लौटाई तो····"

उस्ताद—"अब इस 'तो' का जवाब तो मेरे पास है नहीं; मगर इतना कह सकता हूँ कि बेईमानियाँ मुझे बदनाम कर देंगी।"

इस पर तिवारीजी ने कहा—"अरे साहब! क्या यह तिवारी मर गया है? शहर में रहना मुश्किल कर दूँ, बाज़ार में निकलना बन्द कर दूँ। फ़ीस लेकर भाग जाना कोई हँसी-खेल है?"

जब हमें विश्वास हो गया कि इसमें कोई धोखा नहीं है, तब हमने फ़ीस के रुपये लाकर उस्ताद की भेंट कर दिये और कहा—"उस्ताद, कल सवेरे-सवेरे ही आ जाना। हम तैयार

रहेंगे। हमने इस काम के लिये कपड़े भी बनवा लिये हैं। और अगर गिर पड़े तो घाव पर लगाने के लिये ज़म्बक भी ख़रीद लिया है। और हाँ, हमारे पड़ोस में जो मिस्त्री रहता है, उससे साइकिल भी माँग ली है। आप सवेरे ही चले आवें तो हरि का नाम लेकर शुरू कर दें।

तिवारीजी और उस्ताद ने हमें हर तरह से तसल्ली दी और चले गये। इतने में याद आया कि एक बात कहना भूल गये। नंगे पाँव भागे और उन्हें बाज़ार में जा पकड़ा। वे हैरान थे। हमने हाँफते-हाँफते कहा—उस्ताद, हम शहर के पास नहीं सीखेंगे, लारेंस-बाग़ में जो मैदान है, वहाँ सीखेंगे। वहाँ एक तो भूमि नरम है, चोट कम लगती है। दूसरे वहाँ कोई देखता नहीं है।

[२]

अब रात को आराम की नींद कहाँ? बार-बार चौंकते थे और देखते थे कि कहीं सूरज तो नहीं निकल आया। सोते थे तो साइकिल के सपने आते थे। एक बार देखा कि हम साइकिल से गिरकर जख़्मी हो गये हैं, और अस्पताल में अंग्रेज़ हमारा आपरेशन कर रहा है। दूसरी बार देखा कि हम ज़मीन पर खड़े हैं और हमारी साइकिल आसमान पर चल रही है। फिर ऐसा मालूम हुआ कि हमारे उस्ताद ने हमें गोद में उठाकर उछाल दिया। दूसरे क्षण में देखा, हम साइकिल पर सवार हैं, साइकिल आप से

आप हवा में चल रही है। और लोग हमारी तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं। एकाएक एक देवता ने आकर हमारे कंधे पर हाथ रख दिया, और हम ज़मीन पर गिर पड़े। तब हमारी आँख खुल गई—देखा, यह सब सपना था और हम चारपाई पर लेटे हैं।

उठकर देखा। दिन निकल आया था। जल्दी से जाकर पुराने कपड़े पहन लिये, ज़म्बक का डिब्बा हाथ में ले लिया और नौकर को भेजकर मिस्त्री साहब से साइकिल मँगवा ली। इसी समय उस्ताद साहब भी आ गये और हम भगवान का नाम लेकर लॉरेंस-बाग़ की ओर चले; लेकिन अभी घर से निकले ही थे कि बिल्ली रास्ता काट गई और एक लड़के ने छींक दिया। क्या कहें, हमें उस समय कैसा क्रोध आया; पर दाँत पीसकर रह गये। एक बार फिर भगवान का पावन नाम लिया, और आगे बढ़े। पर बाज़ार में पहुँचकर देखा कि हर आदमी जो हमारी तरफ़ देखता है, मुस्कुराता है। अब हम हैरान थे कि बात क्या है। सहसा हमने देखा कि हमने जल्दी और घबराहट में पाजामा और अचकन दोनों उलटे पहन लिये हैं, और लोग इसी पर हँस रहे हैं। सिर मुड़ाते ही ओले पड़े।

हमने उस्ताद से माफ़ी माँगी और घर लौट आये। अर्थात् हमारा पहला दिन मुफ़्त में गया।

दूसरे दिन निकले। हमारे घर के पास जो लाला साहब

रहते हैं, वे सामने आ गये और मुस्कुराकर बोले—"कहिये, कहाँ जा रहे हैं?"

ये लाला साहब यों तो बहुत भले आदमी हैं; लेकिन इनकी एक आदत बहुत बुरी है। जिससे मिलते हैं, उसी से पूछते हैं, कहाँ चले। कई बार समझाया कि जब कोई काम पर निकले और उससे 'कहाँ' पूछा जाय तो वह काम कभी नहीं होता और जिसका काम बिगड़ जाता है वह 'कहाँ' पूछनेवाले को गालियाँ देता है; मगर लाला साहब पर ज़रा असर नहीं होता। इस समय हमने उनसे बचने का कितना यत्न किया, किस-किस तरफ़ मुँह मोड़ा; मगर उनकी "कहाँ" की तोप से कौन बच सकता है। महात्माजी ने सामने आकर गोला दाग़ ही तो दिया।

हमने जल-भुनकर जवाब दिया—"नरक को जा रहे हैं! आप भी चलेंगे क्या?"

लाला साहब—"अरे! मैंने तो पूछा था कि आप कहाँ जा रहे हैं।"

हम—"और मैंने प्रार्थना की है कि नरक को जा रहे हैं। दो आदमियों की जगह खाली है। अगर आप न पूछते तो आपका क्या बिगड़ जाता—दुनियाँ में कौनसी कमी रह जाती?"

लाला—"भगवान जानता है, मुझे मालूम न था कि आप किसी काम के लिये जा रहे हैं।"

हम—"मानों हम बेकार घूमा करते हैं।"

लाला—"अजी जनाब! आप भी क्या बात करते हैं। मैं आप की शान में ऐसी गुस्ताख़ी कर सकता हूँ? मेरा मतलब यह था...."

हम—"कि इनसे 'कहाँ' न पूछा तो प्रलय हो जायगा? ज़रा सोचिये, आपसे कितनी बार हमने निवेदन किया है कि हमें इस 'कहाँ' से डर लगता है; मगर आपको यह ऐसा रोग लगा है कि पीछा ही नहीं छोड़ता। आज ही साइकिल चलाना सीखने जा रहे थे। यह देखिये, पुराने कपड़े और जैम्बक का डिब्बा और ये उस्ताद साहब और यह साइकिल; लेकिन इस कहाँ ने आज का दिन भी ख़राब कर दिया। आपने तो मुस्कुराकर पूछ लिया—कहाँ? हमारे दो रुपये का नुकसान हो गया।"

उधर उस्ताद साहब ने साइकिल की घंटी बजाकर हमें अपने पास बुलाया और बोले—"मैं एक गिलास लस्सी पी लूँ। आप ज़रा साइकिल को थामिये।"

लाला साहब ने यह अवसर पाया, तब प्राण लेकर भाग निकले, वर्ना हम उनसे उस दिन कागज़ लिखा लेते कि अब फिर किसी से 'कहाँ' नहीं पूछेंगे।

[४]

उस्ताद साहब लस्सी पीने लगे तब हमने साइकिल के पुर्जों की ऊपर-नीचे से परीक्षा शुरू कर दी। फिर कुछ जी में आया,

तब उसका हैंडल पकड़कर ज़रा चलाने लगे; मगर दो ही कदम गये होंगे कि ऐसा मालूम हुआ, जैसे साइकिल हमारे सीने पर चढ़ी आती है। अब तो हमें पूरा विश्वास हो गया कि यह सब लालाजी के 'कहाँ' का प्रभाव है, वर्ना बेजान साइकिल में यह साहस कहाँ कि हमारे-जैसे पुरुष-सिंह पर धावा बोल दे। इस समय हमारे सामने यह गम्भीर प्रश्न था कि क्या करना चाहिये। युद्ध-क्षेत्र में डटे रहें या हट जायँ? सोच-विचार के बाद यही निश्चय हुआ कि यह लोहे का घोड़ा और फिर लालाजी का 'कहाँ' इसके साथ! इनके सामने हम क्या चीज़ हैं? बड़े-बड़े वीर योद्धा भी नहीं ठहर सकते। इसलिये हमने साइकिल छोड़ दी, और भगोड़े सिपाही बनकर मुड़ गये; पर दूसरे क्षण में साइकिल अपने पूरे ज़ोर से हमारे पाँव पर गिर गई और हमारी राम-दुहाई बाज़ार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूँजने लगी। उस्तादजी लस्सी छोड़कर दौड़ आये और दयावान लोग भी जमा हो गये। सबने मिल-मिलाकर हमारा पाँव साइकिल से निकाला। भगवान के एक भक्त ने जैम्बक का डिब्बा भी उठाकर हमारे हाथ में दे दिया। दूसरे ने हमारी बग़लों में हाथ डालकर हमें सँभाला और सहानुभूति से पूछा—"चोट तो नहीं आई? ज़रा दो-चार कदम चलिये। नहीं लहू जम जायगा।"

हम बेशर्मों के समान खड़े हो गये, और हमने अपने शरीर का सारा भार पाँव पर डालकर देखा कि पाँव जोर खाता है या

नहीं। उस्ताद ने साइकिल को अच्छी तरह देखकर कहा—"यह तो टूट गयी, बनवानी पड़ेगी।"

और यह हम पहले से ही जानते थे। यह लालाजी के 'कहाँ' की तासीर थी। इस तरह दूसरे दिन हम और हमारी साइकिल अपने घर से थोड़ी दूरी पर जख़्मी हो गये। हम लँगड़ाते हुए घर लौट आये, साइकिल को ठोक-पीटकर ठीक करने के लिये मिस्त्री की दूकान पर भेज दिया।

मगर हमारे वीर हृदय का साहस और धीरज देखिये—अब भी मैदान में डटे रहे। कई बार गिरे, घुटने तुड़वाये, कपड़े फड़वाये; पर क्या मजाल, जो जी छूट जाय। आठ-नौ दिन में साइकिल चलाना सीख गये; लेकिन अभी तक उस पर चढ़ना नहीं आता था। कोई परोपकारी पुरुष सहारा देकर चढ़ा देता तो फिर लिये चले जाते थे। हमारे आनन्द की कोई सीमा न थी। सोचते थे, मार लिया मैदान हमने! दो-चार दिन में पूरे मास्टर बन जायँगे, इसके बाद प्रोफेसर और इसके बाद प्रिंसिपल—फिर ट्रेनिंग कालेज, और तीन-चार सौ रुपया मासिक! तिवारीजी देखेंगे और ईर्ष्या से जलेंगे।

उस दिन उस्ताद ने हमें साइकिल पर चढ़ा दिया और सड़क पर छोड़ दिया कि जाओ, अब तुम सीख गये।

अब हम साइकिल चला रहे थे और दिल ही दिल फूले न

समाते थे कि आख़िर हमने सिंहगढ़ को जीत ही लिया; मगर हाल यह था कि कोई आदमी दो सौ गज़ के फ़ासले पर भी होता तो हम गला फाड़-फाड़कर चिल्लाना शुरू कर देते—साहब! ज़रा बाईं तरफ़ हट जाइयेगा। हम नये सवार हैं, और साइकिल हमारे बस में नहीं है। दूर फ़ासले पर कोई गाड़ी दिखाई देती, और हमारे प्राण सूख जाते। कभी-कभी ऐसा ख़याल आता कि यह गाड़ी सिर्फ़ हमें अपनी लपेट में लेने के लिये आ रही है। उस समय हमारे मन की जो दशा होती, उसे हमारा परमेश्वर ही जानता। जब गाड़ी निकल जाती तब कहीं जाकर हमारी जान में जान आती।

सहसा सामने से तिवारीजी आते दिखाई दिये। हमने उन्हें भी दूर से ही चेतावनी दे दी कि ओ तिवारी! बाईं तरफ़ हो जाओ, वर्ना साइकिल तुम्हारे ऊपर चढ़ा देंगे।

तिवारीजी ने अपनी छोटी-छोटी आँखों से हमारी तरफ़ देखा और मुस्कुराकर कहा—"ज़रा एक बात तो सुनते जाओ।"

हमने एक बार हैंडल की तरफ़ और दूसरी बार तिवारी की तरफ़ देखकर जवाब दिया—"इस समय कैसे बात सुन सकते हैं? देखते नहीं हो, साइकिल पर सवार हैं। कहने लगे, एक बात सुनते जाओ!"

"अरे भाई! साइकिल चला रहे हैं, साइकिल!"

तिवारी—"तो क्या, जो साइकिल चलाते हैं वे किसी की बात नहीं सुनते? बड़ी ज़रूरी बात है। ज़रा उतर आओ।"

हमने लड़खड़ाते हुए साइकिल को सँभालते हुए जवाब दिया—"उतर आये तो फिर चढ़ायेगा कौन? अभी चलाना सीखा है, चढ़ना नहीं सीखा।"

तिवारीजी चिल्लाते ही रह गये, हम आगे निकल गये। इतने में सामने से एक ताँगा आता नज़र आया। हमने उसे भी दूर से ही डाँट दिया—बाईं तरफ़ भाई! अभी नया चलाना सीखा है।"

ताँगा बाईं तरफ़ हो गया। हम अपने रास्ते चले जा रहे थे। एकाएक पता नहीं, घोड़ा भड़क उठा या ताँगेवाले को शरारत सूझी। जो भी हो, ताँगा हमारे सामने आ गया। हमारे हाथ-पाँव फूल गये। ज़रा-सा हैंडल घुमा देते तो हम दूसरी तरफ़ निकल जाते; मगर बुरा समय आता है तब बुद्धि पहले भ्रष्ट होती है। उस समय हमें ख़्याल ही न आया कि हैंडल घुमाया भी जा सकता है। उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि विधाता ने हमारी साइकिल के लिये वही रास्ता नियत कर दिया है जिस पर ताँगा आ रहा था।

क्षण भर में हमारे जीवन की सारी घटनाएँ हमारी आँखों में फिर गयीं और दूसरे क्षण में हम और हमारी साइकिल दोनों ताँगे

के नीचे थे । जब हम होश में आये तब अपने घर में थे, और हमारी देह पर कितनी ही पट्टियाँ बँधी थीं ।

उस घटना के बाद फिर कभी हमने साइकिल को हाथ नहीं लगाया ।

कठिन शब्दों के अर्थ

धारणा - विश्वास ।
शुरूआत - प्रारंभ ।
चुपचुपाते - चुपचाप, बिना कहे ।
फ़िसड्डी - पिछड़े हुए ।
ज़रा ज़रा - छोटे छोटे ।
ताबड़-तोड़ - जल्दी जल्दी ।
गुर - रहस्य, क़ायदा ।
कानोंकान - ज़रा भी ।
मक़बरा - कब्र ।
ताँगा - घोड़ा गाड़ी ।
जैम्बक - चोट पर लगाने का मरहम ।
ताकि - जिससे ।
शागिर्दी - शिष्यत्व ।
उधेड़-बुन - सोच- विचार ।
आवाज़ दो - बुलाओ, पुकारो ।
मुहरे - गोटियाँ (शतरंज के हाथी, घोड़े आदि)
घुटा - मुंड़ा, बाल कटाया ।
खातिर - इज्ज़त, वास्ते ।
शरीफ़ - सज्जन ।
पेशगी - अगाऊ (Advance) ।
तसल्ली - धीरज ।
जख्मी - घायल
(बिल्ली का रास्ता काटना और छींकना अशुभ माना जाता है ।)
अचकन - एक तरह का कुर्ता ।
सिर मुड़ाते ही ओले पड़े (कहा०) - पहली ही बार अपशकुन ।
गुस्ताख़ी - दिल्लगी, क़सूर, अपराध ।
लस्सी - एक तरह का शर्बत ।
वर्ना - नहीं तो ।
तासीर - असर ।
जी छूटना - हिम्मत टूटना ।
मैदान मारना - जीतना ।
फूले न समाना - खुश होना ।
सिंहगढ़ - एक क़िला, जिसे शिवाजीने मुसलमानों के हाथ से छीना था ।
जान में जान आना - भय दूर होना
शरारत - बदमाशी ।
हाथ-पांव फूल गये - डर से भर गया ।

विद्यार्थियों की ग्राम-सेवा

[इसके लेखक हैं श्री दयाशंकरजी दुबे। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर हैं और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के परीक्षा मन्त्री भी हैं। आपने अर्थशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकें भी हिन्दी में लिखी हैं जो बहुत ही उपयोगी हैं। आप बहुत ही सरल शैली में लिखते हैं।]

भारत कृषिप्रधान देश है। इसकी अधिकांश जनता गाँवों में निवास करती है। कई कारणों से ग्रामवासियों की आर्थिक दशा बहुत ही शोचनीय हो गई है। कठिन परिश्रम करने पर भी करोड़ों ग्रामवासियों को रूखा-सूखा भरपेट भोजन प्रतिवर्ष महीनों तक नसीब नहीं होता। बिना ग्रामवासियों की आर्थिक दशा सुधारे देश की किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती। ग्रामवासियों की दशा सरकार, ग्रामवासी और जनता—तीनों के सहयोग से सुधर सकती है। देश के विद्यार्थी भी इस पवित्र कार्य में भाग ले सकते हैं। अभी मुझे इस बात का अफ़सोस है कि विद्यार्थी-जीवन में मैं इस कार्य में कोई भाग न ले सका।

इस लेख में मैं यह बतलाने का प्रयत्न करता हूँ कि विद्यार्थी इस कार्य में किस प्रकार सफलता-पूर्वक भाग ले सकते हैं। सब से पहले विद्यार्थियों को एकत्रित होकर ग्राम-सेवा-समिति शीघ्र ही

स्थापित करनी चाहिये। इस समिति के सदस्य वे ही विद्यार्थी हो सकेंगे जो प्रति सप्ताह ग्रामों में जाकर लगन के साथ ग्राम-सुधार का कार्य करने को तैयार हों। इस समिति के नियम ऐसे बनाये जायँ जिससे प्रत्येक सदस्य को महीने में कम-से-कम तीन बार ग्राम में सेवा-कार्य के लिये जाना अनिवार्य हो। प्रारम्भिक दशा में इस समिति के सभापति और कोषाध्यक्ष अध्यापकों को ही होना चाहिये। उपसभापति तथा कार्य-समिति के अन्य सदस्य विद्यार्थी हों। इनका चुनाव प्रतिवर्ष जुलाई महीने में होना चाहिये। समिति का कार्य प्रतिवर्ष अगस्त महीने में आरम्भ हो जाना चाहिये।

पदाधिकारियों और सदस्यों को अध्यापकों तथा नगर के प्रतिष्ठित धनवान सज्जनों से चन्दा इकट्ठा करने का भी प्रयत्न करना चाहिये। पदाधिकारियों का चुनाव हो जाने पर अपने कार्य के लिये गाँव का चुनाव करना चाहिये। गाँव बहुत अधिक दूर न होना चाहिये। दस-बारह मील के अन्दर ही यदि सड़क के किनारे का कोई गाँव चुना जायगा तो सदस्यों को प्रतिसप्ताह वहाँ जाने में विशेष असुविधा न होगी। यदि चुने हुए प्रत्येक गाँव में पाठशाला भी हो तो कार्य में अध्यापकों से अच्छी सहायता मिल सकेगी।

गाँव का चुनाव हो जाने के बाद समिति के सदस्यों को अपना कार्य आरम्भ करने के पहले ग्रामवासियों की सहानुभूति प्राप्त

करने का एक अच्छा उपाय यह है कि ग्राम में समिति की ओर से एक छोटा-सा दवाख़ाना स्थापित कर दिया जाय और इस दवा-ख़ाने से ग्रामवासियों को बिना मूल्य औषधि दी जाय। इस औषधालय का ख़र्च उस रकम से चल सकता है, जो समिति के सदस्यों ने चन्दे द्वारा इकट्ठी की हो। यदि समिति के पास औषधालय चलाने के लिये धन न हो तो समिति के सदस्यों को ग्राम में ग्रामवासियों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये एक छोटा-सा वाचनालय शीघ्र स्थापित कर देना चाहिये। अध्यापकों तथा समिति के सदस्यों के पास जो साप्ताहिक और दैनिक हिन्दी-पत्र आते हैं, वे बिना ख़र्च के ग्राम के वाचनालय में आसानी से प्रति सप्ताह पहुँचाये जा सकते हैं। ग्रामीण पाठशाला के किसी उत्साही अध्यापक अथवा अन्य किसी ग्रामीण नवयुवक को इस ग्राम-वाचनालय को प्रतिदिन खोलने का भार सौंप देना चाहिये। वाचनालय की स्थापना पाठशाला-भवन में, ग्राम के मन्दिर में अथवा अन्य किसी केन्द्रीय स्थान में की जानी चाहिये। वाचनालय की रोशनी इत्यादि का ख़र्च समिति को देना चाहिये। जब ग्रामवासी इस वाचनालय से लाभ उठाना आरम्भ कर दें, तब समिति की तरफ़ से इस वाचनालय को कुछ उत्तम पुस्तकें—विशेष-कर कृषि-सुधार-सम्बन्धी पुस्तकें भेंट की जानी चाहिये और वाचना-लय के साथ-ही-साथ रात्रि-पाठशाला भी स्थापित की जानी चाहिये। इस पाठशाला में गाँव के उत्साही किसानों को अक्षर-

ज्ञान प्राप्त कराने की कोशिश करनी चाहिये। प्रारम्भिक पाठशाला के किसी अध्यापक को ही इस रात्रि-पाठशाला का भार सौंप देना अच्छा होगा। यदि आवश्यक समझा जाय तो इस अध्यापक को थोड़ा-बहुत वेतन भी समिति की ओर से दिये जाने का इन्तज़ाम होना चाहिये। यदि समिति द्वारा औषधालय स्थापित हो गया हो तो औषधालय के वैद्य को ही वाचनालय और रात्रि-पाठशाला—दोनों का भार सौंप देना चाहिये।

औषधालय, वाचनालय और रात्रि-पाठशाला स्थापित हो जाने पर समिति के सदस्यों को गाँव की सफ़ाई की तरफ़ ध्यान देना चाहिये। टोकरी और फावड़ा लेकर समिति के सदस्यों को अपने हाथों से गाँव की सफ़ाई करनी चाहिये। इसका प्रभाव ग्राम-वासियों पर बहुत ही अच्छा पड़ेगा और वे स्वयं ही समिति के सदस्यों के आदेशानुसार सफ़ाई की व्यवस्था करने लगेंगे। साधारणतः गाँव के कुओं के आस-पास बहुत गन्दगी रहती है। कहीं-कहीं गड्ढों में पानी भरा रहता है। इनमें मच्छर पैदा हो जाते हैं और मलेरिया फैलता है। कहीं-कहीं मकानों से गन्दा पानी रास्तों पर बहने लगता है। इन सबको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये।

यदि उस गाँव में सरकारी शाखा-समिति स्थापित न हो तो ग्राम-सेवा-समिति के सदस्यों को सरकारी सहकारी विभाग की

सहायता से वहाँ सहकारी शाखा-समिति स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये। इस शाखा-समिति से ग्रामवासियों को बहुत लाभ होगा। उनको खेती के आवश्यक ख़र्च के लिये रुपया कम व्याज पर मिलने लगेंगे और वे फ़ज़ूल-ख़र्ची से भी बचेंगे।

यदि उस गाँव में ग्रामीण पंचायत न स्थापित हो तो जिले के सरकारी अफ़सरों की सहायता से वहाँ पंचायत स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये। पंचायत के स्थापित हो जाने पर ग्रामवासियों के साधारण दीवानी और फ़ौजदारी मुकदमे पंचायत द्वारा ही तय होने लगेंगे और वे अनावश्यक मुक़दमेबाज़ी से बच जावेंगे।

यदि ग्राम-सेवा-समिति के सदस्यों को यह जान पड़े कि किसानों के खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में दूर-दूर बँटे हुए हैं और इसके कारण किसानों को बहुत आर्थिक कष्ट उठाना पड़ रहा है तो उस ग्राम के खेतों की चकबंदी कराने का प्रयत्न होना चाहिये। यह कार्य सरकारी सहकारी विभाग की सहायता से आसानी से हो सकेगा।

ग्राम-सेवा-समिति के सदस्यों को फ़सल की बोनी के समय सरकारी कृषि-विभाग के सहयोग से किसानों को उत्तम बीज दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये। उत्तम बीज प्राप्त होने पर किसानों की उपज में वृद्धि होगी और उनको अपनी फ़सल के लिये दाम

भी अच्छा मिलेगा। यदि उस गाँव के किसान गोबर के कण्डे बनाकर जला देने के बदले उसे अपने खेतों में खाद के रूप में उपयोग करने लग जायँ तो उनकी उपज में काफ़ी वृद्धि होने लगे। ग्राम-सेवा-समिति के सदस्यों को चाहिये कि वे किसानों को गोबर के कण्डे बनाकर जलाने की प्रथा को बन्द करने के लिये राज़ी करें। ग्राम-सेवा-समिति के सदस्य किसानों को उनकी फ़सल के लिये उचित दाम प्राप्त करने में भी सहायता पहुँचा सकते हैं।

किन्तु एक बात याद रहे। समिति के सदस्यों का व्यवहार किसी भी प्रकार ग्रामीणों को असहनीय न हो। शुद्ध चरित्र होना चाहिये। भोले-भाले किसान सद्व्यवहार एवं मृदु भाषण द्वारा शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। समिति के प्रत्येक सदस्य का यह पवित्र धर्म होना चाहिये कि वह ऐसा कार्य कभी न करे, जिससे उसकी समिति ग्रामीणों का हित करने के बदले स्वयं भार-रूप हो जाय।

कठिन शब्दों के अर्थ

नसीब होना - मिलना।
पदाधिकारी - सभापति वगैरह (office-bearers)।
सहकारी साख समिति - co-operative credit societies.
ब्याज - सूद।
दीवानी - civil.
फौजदारी - criminal.
चकबंदी - छोटे-छोटे टुकड़ों को मिलाकर फिर बड़े-बड़े टुकड़ों में बाँटना।
कण्डे - उपले।
योजना - स्कीम (scheme)।

मेरी कैलाश-यात्रा

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

[स्वामी सत्यदेवजी से दक्षिण-भारत के लोग परिचित हैं। स्वामीजी सबसे पहले यहाँ हिन्दी-प्रचार करने आये थे। उसके बाद भी आप १९४० में दक्षिण भारत में भ्रमण कर गये हैं। आपने अपनी उम्र ही भ्रमण में खर्च कर दी है। कैलाश पहाड़, मान सरोवर, अमेरिका, जर्मनी आदि प्रदेशों में आप पैदल घूमे हैं। उन्हीं अनुभवों को आपने पुस्तक रूप में लिखा है। यात्रा-सम्बन्धी लेखकों में आप प्रथम हैं। आपने ही यात्रा-संबंधी लेख हिन्दी में लिखना शुरु किये। आपने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं। आप आर्य-समाजी हैं। आपके विचार बड़े जोशीले होते हैं। आप बाल-संन्यासी हैं। आपका जन्म पंजाब में हुआ था आजकल आप 'सत्यज्ञान निकेतन', ज्वालापुर (हरिद्वार) में रहते हैं।]

अल्मोड़ा से कैलाश की ओर जाने में पहले बागेश्वर आता है। मैं कई साथियों के साथ अलमोड़े से चलता हुआ, पहाड़ी दृश्य देखता हुआ, पहाड़ी नालों की गड़गड़ सुनता हुआ आनंद से जा रहा था। हम कहीं नाले के किनारे किनारे जा रहे हैं, कहीं घिरे हुए वृक्षों के ठंडे मार्ग से, कहीं दोनों ओर लंबे लंबे चीड़ के वृक्षों की सर-सर ध्वनि सुनाई देती है, कहीं बिलकुल नीचे की ओर उतर रहे हैं, कहीं थोड़ा चढ़ाव है। दस बजे के लगभग एक ऊँची चढ़ाई के पास पहुँचे। यहाँ से डेढ़ मील विकट चढ़ाई है। धीरे-धीरे कई जगह दम लेते हुए पहाड़ के ऊपर पहुँचे

और उस चढ़ाई को पार किया। मार्ग में पसीने से नहा गये। जब चढ़ाई समाप्त हुई, तब ठंडे पानी की धार मिली। वहाँ बैठकर दम लिया, और जल पिया। ठंडा बर्फानी जल क्या स्वाद देता था, वाह! यहाँ से फिर दो-एक लोगों को साथ लिया और बड़े विकट रास्ते को पार करके बागेश्वर पहुँचे। बागेश्वर में सरयू नदी का दृश्य दिखलाकर वहाँ की कुछ बात बतलानी है। दोनों ओर दूर तक लंबी, ऊँची, हरी-हरी पहाड़ियों के बीच चौरस घाटी में आप अपने-आपको खड़ा हुआ समझिये। उसी घाटी के बीच पत्थरों को रगड़ती हुई सरयू नदी बह रही है। पिता हिमाचल की गोद से निकलकर अपनी सहचरियों के साथ टेढ़े-मेढ़े चक्कर काटती हुई सरयू मस्तानी चाल से बागेश्वर में पहुँचती है। यहाँ पश्चिम से आनेवाली अपनी बहिन गोमती के स्वागत के लिये वह अपनी चाल धीमी कर, बड़े प्रेम से उसको निहारती है। फिर वेग से आगे बढ़कर भगिनी का मुख चूमती है। अहा! क्या सुन्दर दृश्य है! सरयू के किनारे पश्चिम की ओर पीठ कर खड़े होने से सामने निकट ही 'चंडी पर्वत' के दर्शन होते हैं। उसके ऊपर चंडी महारानी का मंदिर है। पीछे पश्चिम में 'नील पर्वत' अपनी छटा दिखलाता है। इस पर भगवान नीलेश्वर विराजमान हैं। पूर्व से भागीरथी की धारा आकर सरयूजी के चरण छूती है। भागीरथी और सरयू मिलकर वहाँ गोमती से भेंट करती हैं। वहाँ संगम पर बाँधनाथजी का प्राचीन मंदिर

है। यहाँ मकर-संक्रान्ति—तेरह जनवरी को बड़ा भारी मेला होता है। बागेश्वर सरयूजी के दोनों किनारों पर बसा है। दोनों किनारों पर आमने-सामने दूकानें हैं। दो पुल बने हैं—एक गोमती पर दूसरा सरयू पर। बागेश्वर में पुल के पास ऊँचे पत्थर पर बैठकर मैंने सरयूजी की छटा देखी, स्नान का बड़ा आनन्द आया। बागेश्वर में तीन दिन रहा। सरयूजी का स्नान नहीं भूलेगा। अवधवासियों को चाहिये कि बागेश्वर में जाकर सरयू का विचित्र आनंद लूटें। इधर की छटा ही निराली है। जून ११, सोमवार को सवेरे छः बजे के बाद बागेश्वर से चला। मेरे प्रेमियों ने मेरा सामान, बिस्तरा और फलों की थैली उठाने के लिये कुली खोज दिया था। मैंने सब से वंदे कहा; फिर छतरी, कमंडल और लंबी लाठी उठा सड़क पर हो लिया। इतने में घनघोर घटा छा गयी, वर्षा होने लगी। सरयूजी का पहाड़ी राग सुनते जा रहे थे। मार्ग बुरा है, कहीं नदी के किनारे-किनारे, और कहीं दूर होकर गया है। वर्षा से सड़क और भी बिगड़ गयी है। भागते-भागते सात मील पूरे किये और कपिकोट पहुँचे। कपिकोट से सवेरे दूध पीकर चला। दोनों साधु काम से पीछे रह गये। कुछ सज्जन दूर तक पहुँचाने के लिये साथ आये। सरयू के किनारे-किनारे प्रकृति माता के दृश्यों का आनन्द लेता हुआ मैं चला। कपिकोट से तीन मील तक सरयू घाटी का दृश्य बड़ा ही मनोहर है। हरी पहाड़ियों पर गाय-बकरी चर रही

थीं, किनारे किनारे जहाँ घाटी चौड़ी हो गयी है, भूमि भली, घास से लदी हुई, बड़ी सुहावनी दीख पड़ती है। नदी का पाट चौड़ा है; पर जल कम है। क्योंकि अभी वर्षा आरंभ नहीं हुई थी। आकाश निर्मल था। आनन्द में मग्न मैं चला जा रहा था। सामने गाय-भैंसें रास्ते में खड़ी थीं। उनके साथ मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए चरवाहे भी थे। लाठी से मैंने अपने लिये रास्ता किया। गायें छोटी थीं और चरवाहे भी वैसे ही थे। ऐसे सुन्दर सुहावने जलवायु में उनकी ऐसी दुर्दशा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

गायें इधर की आध सेर-तीन पाव दूध देती हैं और छोटी होती हैं। हिमालय तो विशाल, उसकी नदियाँ भी वैसी ही; परन्तु पहाड़ी मनुष्य और पशुओं पर अधःपतन ने पूरा प्रभाव डाला है। पुस्तकों में पढ़ा करते थे कि पहाड़ी आदमी वीर, उत्साही और स्वतंत्रता-प्रिय होते हैं; पर इधर के पहाड़ियों में इन गुणों का सर्वथा अभाव है। सैकड़ों वर्ष के दासत्व ने इनका मनुष्यत्व नष्ट कर दिया है। दासता इनकी मुखाकृति पर झलक रही है; पर सरयू अपनी उसी पुरानी चाल से, अपने उसी यौवन-मद में लड़ती-झगड़ती जा रही है। उसको अपने काम से काम है। सड़क के किनारे-किनारे ठंडे सोतों का जल यात्री की प्यास को दूर करता है। तीन मील पूरे हो गये। सरयूजी की घाटी छोड़कर 'नोहार' का रास्ता पकड़ा। यहाँ दो रास्ते हैं, एक

पिंडारी ग्लेशियर को जाता है, दूसरा कैलाश की ओर गया है। मैं और मेरा कुली दाहिने रास्ते हो लिये। नाले के किनारे-किनारे चले। यहाँ पर मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि पानी सभ्यता प्रचार करनेवाला बड़ा भारी इंजीनियर है। पहाड़ों को काटकर रास्ता बनानेवाला और सभ्यता लानेवाला जल है। कैसे-कैसे पर्वतों को इसने काटा है, कहाँ की मिट्टी लाकर यह खेत बनाता है। दुर्गम हिमालय में मार्ग बनाना इसी का काम है। नाले के किनारे-किनारे सुन्दर सड़क बनी हुई है। बादल आ जाने से ठंडा हो गया था। छोटे-छोटे दस-पाँच घरों के गाँव कई देखने में आये। स्थान-स्थान पर हरे धान लहलहा रहे थे। जहाँ थोड़ी-सी भूमि मिली वहीं खेती कर लेते हैं। बेचारे पहाड़ी इसी पर जीवन निर्वाह करते हैं। आज जुराव पहनकर नहीं चला था; इसलिये मच्छड़ों ने कष्ट दिया। यात्री को चाहिये कि कपिकोट से जुरावे पहन ले। जुरावे घुटनों तक हों। दो-चार साथियों के साथ यात्रा करे तो अच्छा है; क्योंकि आजकल यह रास्ता बहुत कम चलता है। कोई पथिक रास्ते में नहीं मिलता, इसलिये उन बंधुओं को जो नगर में रहनेवाले हैं, ऐसे निर्जन पथ में भय लगेगा। यद्यपि डर किसी जीव-जन्तु का नहीं और न लूट-खसोट ही का भय है; पर दृश्य बड़े जंगली हैं। यहाँ एकान्त शब्द की सार्थकता बोध होने लगती है और नास्तिक भी आस्तिक बनने की इच्छा करने लगता है।

नौ मील चलकर चढ़ाई मिली। धीरे-धीरे पग-पग चढ़ना प्रारंभ किया। थोड़ी दूर चढ़ता तो थक जाता। किसी प्रकार उन दो मीलों को पूरा किया। 'शानाधुरा' के निकट पहुँचे। स्वागत के लिये दो सज्जन आगे से खड़े थे। बड़े प्रेम से ले गये और अपनी दूकान पर ले जाकर ठहराया, सेवा की। अहा! वह मनुष्य कैसा भाग्यवान है जिसकी यात्रा पूरी होने पर प्रेमी सज्जन अगुवानी करते हैं और मीठे-मीठे शब्दों से उसकी थकावट दूर कर देते हैं। अमेरिका में जब मैंने तीन सौ मील की यात्रा की थी तो ४७ मील पैदल चला जाता; मगर मंजिल पूरी होने पर न ठहरने का ठिकाना, न खाने का प्रबंध, न पैसा पास। वे दिन कैसे कटे थे, कभी भूलनेवाले नहीं। डेढ़ घंटे के बाद उदासी साधु भी पहुँच गया। स्नान किया, पत्र लिखे, कुछ विश्राम किया। चरसीनाथ भी धीरे-धीरे आ पहुँचा। ये दोनों महाशय थे निरे मूर्ख, काला अक्षर भैंस बराबर था। चरसीनाथ तो अवस्था में बड़ा होने के कारण कुछ सभ्य भी था, उसे कुछ सत्संग भी हो चुका था, उदासी साधु तो निरा गँवार पंजाबी 'जाट' था। सिवाय खाने-पीने की बात के दूसरी चर्चा न थी। मैंने आज उसे देव-नागरी वर्णमाला के पहले छः अक्षर सिखाये। उसकी आवाज़ अच्छी, मोटी थी। इसलिये मैंने चाहा कि कुछ देश-हित संबन्धी भजन सिखाकर इससे काम लिया जावे, पर उसकी स्मरण-शक्ति बड़ी ही ख़राब थी। वह भजन कंठ नहीं कर सकता

था। दो घंटा सिर खपाकर हारकर मैंने उसे छोड़ दिया। क्या करता! थके हुए यात्री से पत्थर में छेद नहीं हो सकता था। रात को अच्छी तरह नींद नहीं आयी। जहाँ मैं सोया था वहाँ बहुत से चूहे आकर कबड्डी खेलने लगे। उनको मैंने बहुतेरा मना किया; पर वे मूसरचंद कब माननेवाले थे?

कठिन शब्दों के अर्थ

चौरस - समतल।
सहचारी - साथ चलनेवाले।
निहारना - देखना।
अवधवासी - अयोध्या प्रान्त के रहनेवाले।
पाट - चौड़ाई।
सर्वथा - बिलकुल।
जुराब - मोज़ा, Stocking.
रास्ता कम चलता है - रास्ते पर लोग कम चलते हैं।
अगुआनी - आगे आकर स्वागत करना।
चरसीनाथ - एक आदमी का नाम।
काला अक्षर भैंस बराबर - पढ़ना-लिखना मालूम नहीं।
जाट - एक जाति।
कंठ करना - याद करना।
सिर खपाना - दिमाग खराब करना।
मूसरचंद - उजड्ड, मूर्ख।

शंख और शशि .

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

[श्री माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी के प्रसिद्ध भावुक कवि हैं। आप गद्य भी बहुत ही अच्छा लिखते हैं। भाषण करने में तो हिन्दी में आपकी तरह कम ही लोग हैं। आपने एक सुन्दर नाटक 'कृष्णार्जुन-युद्ध' नाम से लिखा है। आप खंडवा से निकलनेवाले 'कर्मवीर' साप्ताहिक पत्र के सम्पादक हैं।]

स्थान—ऋष्याश्रम

(दो ब्रह्मचारी बैठे हैं, पास ही कुछ घड़े पड़े हैं)

एक—लो यह घड़ा, तुम भरो पानी। क्या मुझे ख़रीदा हुआ दास समझ रक्खा है? चले साहब, आप तो सीधे-सीधे कामों में मस्त! भूखों को भोजन दे आये, भूले को मार्ग बता आये और मेरे माथे यह घड़ा मार रखा है, अरे हाँ!

दूसरा—शंख दादा, क्रुद्ध क्यों होते हो? मैं ये सब घड़े भर लूँगा, पर यह तो बताओ कि तुम बैठे-बैठे कौन-सी लङ्का जीत लोगे?

शंख—ए, हम झख मारेंगे, तुम्हारा क्या?

दूसरा—दादा, झख न मारना। उन बेचारे निरपराधी जीवों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है! अहिंसा के विषय में गुरुजी की शिक्षा भूल गये मालूम होते हो।

शंख—वाह रे शशि, धन्य तुम्हारी बुद्धि! झख भी कोई जानवर होता है? हँ-हँ! तब तो आँख मारने में, पलक मारने में, हाथ मारने में, मन मारने में हिंसा होने लगी?

शशि—आपको मालूम नहीं, झख कहते हैं मछली को—ऐसा अमरकोष में लिखा है।

शंख—बस महाराज, मारो उस अमर को। मैं विश्वास दिलाता हूँ आपको, इसमें कुछ हिंसा नहीं होगी। राम-राम, जब से "यस्य ज्ञानदयासिंधो" प्रारंभ किया है नाक में दम आ गया है। टीका-टिप्पणियों में "दित्यमरः" लिखते-लिखते लेखनी घिस गयी। बेचारे विद्यार्थी-जीवन के लिये यही अमर काफी था; परन्तु कहीं से पाणिनी महाराज निकल पड़े। रटो 'सुड्नपुंसकस्य, स्त्री पुंवच्च, असंभोगात लुढकन्त, अन्धभावताभ्यांच शुफ्लुवच्च, मुच्चि रिच्च विच्च सिच्च खिच्च गिच्च पिच्च अद खिद छिद तुद' धत्तेरे की—मेरा तो दम भर गया।

शशि—दादा, थोड़ा विश्राम लो।

शंख—खूब विश्राम लेता हूँ। भरो पानी, मुझे अपने दिल की जलन बुझाने दो।

शशि—दादा, परिश्रम किया करो तो यह जलन उत्पन्न ही न हो। सततास्यास से मूर्ख भी पण्डित हो जाते हैं।

शंख—परिश्रम तो मैं खूब करता हूं और उसका यह परिणाम है कि अभी कहूँ कि भरो पानी तो सततताभ्यासी महाराज मेरे घूंसे को देखकर चुपके से पानी भरना ही पड़े। घूंसे के आगे 'सततताभ्यासी' की भी नहीं चलती।

गायन

है घूँसा देखो दुनिया में बलवान!

इसको मारा उसको पीटा तुमको जा धमकाया,
पंचांगुलि का ऐक्य साधकर सब कुछ बस में लाया।

॥ है घूँसा० ॥

इसके आगे सब ही झुकते बड़े-बड़े अभिमानी,
राजा झुकते, रैयत झुकती मूर्ख और विज्ञानी।

॥ है घूँसा० ॥

है स्वतन्त्रता, पराधीनता दोनों इसकी माया,
इस घूँसे में सब पोथों का सारा तत्व समाया॥

॥ है घूँसा० ॥

(यह कह वह शशि की पुस्तकें छीनकर फेंक देता है)

शशि—*(पुस्तक उठाते हुए क्रुद्ध होकर)* तुम निरे शंख हो!

(झाड़-पोंछकर पुस्तकों को प्रणाम करता है)

शंख—(हाथ उठाकर आशीर्वाद देता है)

वत्स जियो कुछ वर्ष, हर्ष को दूर भगाओ।
बनो दया के पात्र, गात्र को क्षीण बनाओ॥
सदा बढ़े मन्दाग्नि आँख की ज्योति घटाओ॥
बनकर पुस्तक-कीट, जगत में ख्याति बढ़ाओ॥
मेरा आशीर्वाद यह, सिर घूमे पर तुम नहीं।
रोग-शोक-चिन्ताभवन, हो जाओ तुम शीघ्र ही॥

शशि—यह क्या?

शंख—पुस्तकों की ओर से आशीर्वाद!

शशि—पुस्तकों का आशीर्वाद तो पाठशाला में प्रकट होता है। वहाँ शंखजी, आपको बेंत और चपत का आशीर्वाद मिलता है—उसे भूल गये।

शंख—मेरा तो भूलना स्व-भाव ही है, परन्तु तुम्हें सब याद रहता है। व्यायाम-शाला में पुस्तकें नहीं आतीं। याद होगा उस दिन का वह दाँव, जब गिरे थे मुँह के बल!

शशि—और कक्षा में संस्कृत, पाली, पश्तो इत्यादि के समय बैठते हो मुँह लेकर! (मुँह बनाता है)

शंख—रहने दीजिये महाराज अपनी संस्कृत, पाली और परतो को। हमें कहीं गुप्तचर नहीं बनना है और न किसी की चुग़ली ही खानी है।

(ऋषि का प्रवेश ; उन्हें आया जान)

तुम तो हमें खाये जाते हो जैसे ; रहने भी दो, तुम्हें तो लड़ने की आदत पड़ गई है।

शशि—*(ऋषि को देखकर)* प्रणाम।

शंख—*(ऋषि को लम्बी आवाज में)* महाराज, प्रणाम !

ऋषि—वत्स, दोनों कर्मवीर बनो। (शंख से) शंख, यह क्या झगड़ा है ?

शंख—महाराज, क्या कहूँ ? ये कन्धे देखिये। (कन्धे दिखाता है) प्रतिदिन प्रातःकाल घड़े उठाते-उठाते दुखने लगे हैं। आज मैंने शशिभूषणजी से कहा—भैया, दो-एक घड़े भरने में कुछ सहायता कर दो ; तो कहने लगे भैंसे का-सा शरीर लिये हो, घड़े भी नहीं उठते ?

शशि—गुरुजी, स्नान का समय हो गया है ; शंख दादा की बातें तो होती ही रहेंगी।

गालव—वत्स, चलो, पुण्यसलिला भगवती भागीरथी में स्नान कर विश्व की विजयिनी शक्तियों का आवाहन करें।

शंख—पर महाराज, भगवती बड़ी ठंडी हैं, हिम की महतारी रही हैं? रोज़-रोज़ सवेरे नहाते जी ऊब उठता है। (स्वगत) न जाने इससे कब पिण्ड छूटता है।

शशि—हिम की महतारी नहीं, पुत्री हैं।

गालव—(चलते हुए) क्यों शशि?

शशि—ना महाराज, उषाकाल की शान्ति और मधुर वायु हृदय में बिजली दौड़ाती है।

शंख—(स्वगत) शायद इसीलिये थरथर काँपते और दाँत कटकटाते हो।

शशि—भगवती भागीरथी में स्नान करने के पश्चात् कितना आनन्द आता है?

शंख—(स्वगत) यहाँ तो प्राण जाता है।

शशि—उनकी तरंगमयी गोद में तैरते हुए बड़ा ही भला मालूम होता है। जब तरंगें शरीर से आकर लगती हैं, तब दीखता है मानों माता थपकियाँ दे रही हैं।

शंख—थपकियाँ? अरे हंटर मार रही हैं, हंटर! मैं तो मरा जाता हूँ! थपकियाँ! देखना कहीं माता की गोद में सो न जाना।

शशि—भारत माँ के सपूतों के हृदयों की धधकती ज्वाला यदि भगवती गंगा न होती तो कौन बुझाता ?

शंख—पसीने और आँसुओं की धारा-माता !

(तीनों का जाना)

कठिन शब्दों के अर्थ

मार रखा है - ज़बरदस्ती माथे मढ़ रखा है।

लंका जीतना - बड़ा काम करना।

झख मारना - कुछ न करना।

झख - मछली।

लेखनी - कलम।

जलन - गरमी, आग, द्वेष।

सतताभ्यास - बराबर नियमपूर्वक अभ्यास करना।

पंचांगुलि का ऐक्य - मुक्का (घूँसा)।

समाया - भरा है।

निरे शंख - बिलकुल बेवकूफ़।

गात्र - शरीर।

मन्दाग्नि - अपच।

सिर घूमे - पागल होना।

दाँव - घात।

गुप्तचर - जासूस।

पुण्य-सलिला - पवित्र जलवाली।

आवाहन - बुलाना।

महतारी - माँ।

स्वगत - अपने आप।

पिण्ड छूटना - पीछा छूटना।

पश्चात् - बाद।

किसानों में भ्रमण

पं. जवाहरलाल नेहरू

[भारत के हृदय-सम्राट् पं० जवाहरलाल नेहरू से कौन परिचित न होगा ? आप जैसे राजनैतिक क्षेत्र में एक अत्यन्त महान् व्यक्ति हैं, वैसे ही साहित्यिक क्षेत्र में भी आपका कम स्थान नहीं है। समयाभाव रहने पर भी आप कुछ-न-कुछ ठोस सामग्री से हिन्दी-मन्दिर को सजाते रहते हैं। आपकी लिखी हुई कई पुस्तकें निकल चुकी हैं।]

तीन दिन तक मैं गाँवों में घूमता रहा, और एक बार इलाहाबाद आकर फिर वापस गया। हम गाँव गाँव घूमे—किसानों के साथ खाते, उन्हीं के साथ उनके कच्चे झोंपड़ों में रहते, घंटों उनसे बातचीत करते और कभी-कभी छोटी-बड़ी सभाओं में व्याख्यान भी देते। शुरू में हम एक छोटी मोटर में गये थे। किसानों में इतना उत्साह था कि सैकड़ों ने रात-रात भर काम करके खेतों के रास्ते कच्ची सड़क तैयार की, जिससे मोटर ठेठ दूर-दूर के गाँवों में जा सके। अक्सर मोटर अड़ जाती और बीसों आदमी खुशी-खुशी दौड़कर उसे उठाते। आख़िर को हमें मोटर छोड़ देनी पड़ी और ज़्यादातर सफ़र पैदल ही करना पड़ा; जहाँ कहीं हम गये, हमारे साथ पुलिस के लोग, खुफ़िया और लखनऊ के डिप्टी कलेक्टर रहते थे। मैं समझता हूँ, खेतों में हमारे साथ दूर-दूर तक पैदल चलते हुए उनपर एक प्रकार की मुसीबत आ गयी

होगी। वे सब थक गये थे। हमसे और किसानों से बिल्कुल उकता उठे थे। डिप्टी कलेक्टर थे लखनऊ के एक नाज़ुक मिज़ाज नौजवान और पम्प-शू पहने हुए थे। कभी-कभी वह हमसे कहते कि ज़रा धीरे चलें। मैं समझता हूँ, आख़िर हमारे साथ चलना उन्हें दुश्वार हो गया और वह रास्ते में ही कहीं रह गये।

जून का महीना था जिसमें सबसे ज़्यादा गर्मी पड़ती है बारिश के पहले की तपिश थी। सूरज की तेज़ी बदन को झुलसाये देती थी और आँखों को अंधा बनाए देती थी। मुझे धूप में चलने की बिल्कुल आदत न थी और इंग्लैंड से लौटने के बाद हर साल गर्मियों में मैं पहाड़ पर चला जाया करता था। किन्तु इस बार मैं दिन-भर खुली धूप में घूमता था और सिर पर धूप से बचने को हैट भी न था। सिर्फ़ एक छोटा तौलिया सिर पर लपेट लिया था। दूसरी बातों में मैं इतना मशगूल था कि धूप का कुछ ख़्याल भी नहीं रहा; और इलाहाबाद लौटने पर जब कहीं देखा तो मेरे चेहरे का रंग कितना पक्का हो गया था। और फिर मुझे याद पड़ा कि सफ़र में क्या-क्या बीती। लेकिन इस बात पर मैं अपने-आप ख़ुश हुआ; क्योंकि मुझे मालूम हो गया कि बड़े-बड़े मज़बूत आदमियों के बराबर मैं धूप को बर्दाश्त कर सका और जो मैं उससे डरता था उसकी ज़रूरत नहीं थी। मैंने देख लिया है कि मैं कड़ी से कड़ी गर्मी और कड़े से कड़े जाड़े को बिना ज़्यादा

तकलीफ़ के बर्दाश्त कर सकता हूँ। इससे मुझे अपने काम में तथा जेल-जीवन बिताने में बड़ी मदद मिली। इसकी वजह यह थी कि मेरा शरीर आम तौर पर मज़बूत और काम करने लायक था और मैं हमेशा कसरत किया करता था। इसका सबक़ मैंने पिताजी से सीखा था जो थोड़े बहुत कसरती थे और क़रीब क़रीब आख़िरी दिनों तक जिन्होंने अपनी रोज़ाना कसरत जारी रखी थी। उनके सिर पर चाँदी-से सफेद बाल हो गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं और विचार करते-करते बूढ़े दिखाई देते थे। मगर उनका शरीर मृत्यु के एक दो साल पहले तक उनसे बीस बरस कम उम्र के आदमी का जान पड़ता था।

जून १९२० में परतावगढ़ जाने के पहले भी मैं गाँवों से अक्सर गुजरता था। वहाँ ठहरता था और किसानों से बातचीत भी करता था। बड़े-बड़े मेलों के अवसर पर गंगा-किनारे हज़ारों देहातियों को मैंने देखा था और उनमें होमरूल का प्रचार किया था। लेकिन उस समय मैं यह अच्छी तरह न जानता था कि दरअसल वे क्या हैं, और हिन्दुस्तान के लिये उनका क्या महत्त्व है। हममें से ज़्यादातर लोगों की तरह मैं भी उनके बारे में कोई विचार न करता था। यह बात मुझे इस परतावगढ़ की यात्रा में मालूम हुई, और तब से हिन्दुस्तान का जो चित्र मैंने अपने दिमाग में बना रखा है, उसमें हमेशा के लिये इस नंगी-भूखी

जनता के लिये स्थान बन गया है। संभवतः उस हवा में बिजली थी। शायद मेरा दिमाग उसका असर अपने पर पड़ने देने के लिये तैयार था। और उस समय जो चित्र मैंने देखे और जो छाप मुझ पर पड़ी वह मेरे दिल पर हमेशा के लिये अमिट हो गई।

इन किसानों की बदौलत मेरी झेंप निकल गई और मैं सभाओं में बोलना सीख गया। तब तक शायद ही किसी सभा में बोला होऊँ। अक्सर हमेशा हिन्दुस्तानी में बोलने की नौबत आती थी और उसके ख़याल से मैं दहशत खाया करता था। लेकिन मैं किसान सभाओं में बोलने को कैसे टाल सकता था? और इन सीधे-सादे ग़रीब लोगों के सामने बोलने में झेंपने की क्या बात थी? मैं वक्तृत्व-कला तो जानता न था। इसलिये उनके साथ एकदिल होकर बोलता और मेरे दिल और दिमाग में जो कुछ होता था, वह सब उनसे कह देता था। लोग चाहे थोड़े हों या हज़ारों की तादाद में हों, मैं हमेशा बातचीत के या ज़ाती (व्यक्तिगत) ढंग से ही उनके सामने बोलता, और मैंने देखा कि चाहे कुछ कमी भी उसमें रह जाती हो, लेकिन मेरा काम चल जाता था। मेरे व्याख्यान में प्रवाह काफ़ी रहता था। मैं जो कुछ कहता था, शायद बहुत कुछ हिस्सा उनमें से बहुतेरे समझ नहीं पाते थे। मेरी भाषा और मेरे विचार इतने सरल न थे कि वे समझ सकते। बहुत लोग तो मेरा भाषण सुन ही न पाते थे; क्योंकि

भीड़ तो भारी होती थी और मेरी आवाज़ दूर तक नहीं पहुँच पाती थी। लेकिन जब कि वे किसी एक शख़्स पर भरोसा और श्रद्धा कर लेते हैं, तब इन सबकी ज़्यादा परवाह नहीं रहती।

[अनुवादक—हरिभाऊ उपाध्याय]

कठिन शब्दों के अर्थ

ख़ुफ़िया - भेदिया, गुप्तचर।
उकता जाना - ऊब जाना, घबड़ा जाना।
नाज़ुक - कोमल।
दुश्वार - मुश्किल।
बारिस - बरसात।
तपिश - गर्मी।
मशग़ूल - तल्लीन।
बर्दाश्त - सहन।
झुर्रियाँ - शिकन।
दरअसल - वस्तुतः, असल में।
छाप - निशान, मुहर।
बदौलत - द्वारा, ज़रिये।
झेंप - लज्जा, शर्म।
दहशत - भय।

अब्बूख़ाँ की बकरी

[डाक्टर ज़ाकिर हुसैन साहब एम.ए. पी.एच.डी. दिल्ली की प्रसिद्ध राष्ट्रीय-शिक्षा-संस्था "जामये-मिल्लीया-इस्लामिया" के प्रधान हैं। अर्थ-शास्त्र का आपने खूब अध्ययन किया है। आपकी भाषा बड़ी सरल और सुन्दर होती है। आपने बच्चों के वास्ते भी कुछ किताबें लिखी हैं। गांधीजी की वर्धा-स्कीम (बुनियादी तालीम) में आपने पूरा परिश्रम किया है।]

हिमालय पहाड़ का नाम तो आपने सुना ही होगा। इससे बड़ा पहाड़ दुनियाँ में कोई नहीं है। हज़ारों मील चला गया है और ऊँचा इतना है कि अभी तक उसकी ऊँची चोटियों पर कोई आदमी नहीं पहुँच पाया। इस पहाड़ के अन्दर बहुत-सी बस्तियाँ भी हैं। ऐसी ही एक बस्ती अलमोड़ा भी है।

अलमोड़ा में एक बड़े मियाँ रहते थे, उनका नाम था अब्बू-ख़ाँ। उन्हें बकरियाँ पालने का बहुत शौक था। अकेले आदमी थे, बस एक-दो बकरियाँ रखते, दिन भर उन्हें चराते फिरते, उनके अजीब-अजीब नाम रखते। किसी का कल्लू, किसी का मुँगिया, किसी का गुजरी, किसी का हुकमा। इनसे न जाने क्या-क्या बातें करते रहते और शाम के वक्त बकरियों को लाकर घर में बाँध देते। अलमोड़ा पहाड़ी जगह है, इसलिये अब्बूख़ाँ की बकरियाँ भी पहाड़ी नस्ल की होती थीं।

अब्बूख़ाँ ग़रीब थे, बड़े बदनसीब। उनकी सारी बकरियाँ कभी-न-कभी रस्सी तुड़ाकर रात को भाग जाती थीं। पहाड़ी बकरी बँधे-बँधे घबड़ा जाती है। ये बकरियाँ भागकर पहाड़ में चली जाती थीं। वहीं एक भेड़िया रहता था, वह उन्हें खा जाता था; मगर अजीब बात है, न अब्बूख़ाँ का प्यार, न शाम के दाना का लालच, उन बकरियों को भागने से रोकता था, न भेड़िये का डर। इसकी वजह शायद यह हो कि पहाड़ी जानवरों के मिज़ाज में आज़ादी की बहुत मुहब्बत होती है। यह अपनी आज़ादी किसी दामों देने को राज़ी नहीं होते और मुसीबत और ख़तरों को सहकर भी आज़ाद रहने को आराम और आनन्द की क़ैद से अच्छा जानते हैं।

जहाँ कोई बकरी भाग निकली और अब्बूख़ाँ बेचारे सिर पकड़कर बैठ गये। उनकी समझ में ही न आता था कि हरी-हरी घास मैं उन्हें खिलाता हूँ, छिपा-छिपाकर पड़ोसियों के धान के खेत में मैं उन्हें छोड़ देता हूँ, शाम को दाना देता हूँ, मगर यह कम्बख़्त नहीं ठहरतीं और पहाड़ में जाकर भेड़िये को अपना ख़ून पिलाना पसन्द करती हैं।

जब अब्बूख़ाँ की बहुत-सी बकरियाँ यों भाग गईं, तो बेचारे बहुत उदास हुए और कहने लगे—अब बकरी न पालूँगा। ज़िन्दगी के थोड़े दिन और हैं, बे-बकरियों ही के कट जायँगे, मगर तनहाई

बुरी चीज़ है। थोड़े दिनों तो अब्बूख़ाँ बे-बकरियों के रहे, फिर न रहा गया। एक दिन कहीं से एक बकरी ख़रीद लाये। वह बकरी अभी बच्चा ही थी, कोई साल-सवा साल की होगी। पहली दफ़ा ब्याई थी। अब्बूख़ाँ ने सोचा कि कम-उम्र बकरी लूँगा, तो शायद हिल जाय। और उसे जब पहले ही से अच्छे-अच्छे चारे दाने की आदत पड़ जायगी तो फिर वह पहाड़ का रुख़ न करेगी। यह बकरी थी बहुत ख़ूबसूरत, रंग उसका बिलकुल सफ़ेद था। बाल लम्बे-लम्बे थे, छोटे-छोटे, काले-काले सींग ऐसे मालूम होते थे कि किसी ने आबनूस की काली लकड़ी में मेहनत से तराश-कर बनाये हैं। लाल-लाल आँखें तुम देखते तो कहते कि अरे यह बकरी हमने ली होती! यह बकरी देखने ही में अच्छी न थी, मिज़ाज की भी बहुत अच्छी थी। प्यार से अब्बूख़ाँ के हाथ चाटती थी। दूध चाहे तो कोई बच्चा दुह ले, न लात मारती थी, न दूध का बर्तन गिराती। अब्बूख़ाँ तो बस उस पर आशिक़ से हो गये थे। इसका नाम चाँदनी रक्खा था और दिन-भर उससे बातें करते रहते थे। कभी-कभी चचा घसीटाख़ाँ का क़िस्सा उसे सुनाते थे, कभी मामू नत्थू का।

अब्बूख़ाँ ने यह सोचकर कि बकरियाँ शायद मेरे तंग आँगन में घबड़ा जाती हैं, अपनी उस बकरी 'चाँदनी' के लिये नया इन्तज़ाम किया था। घर के बाहर उनका एक छोटा-सा खेत था।

उसके चारों तरफ़ उन्होंने न-जाने कहाँ-कहाँ से काँटे जमा करके डाले थे कि कोई उसमें न आ सके। उसके बीच में चाँदनी को बाँधते थे और रस्सी खूब लम्बी रक्खी थी कि खूब इधर-उधर घूम सके। इस तरह चाँदनी को अब्बूख़ाँ के यहाँ ख़ासा ज़माना गुज़र गया, और अब्बूख़ाँ को यक़ीन हो गया कि आख़िर को एक बकरी तो हिल गयी, अब यह न भागेगी।

मगर अब्बूख़ाँ धोखे में थे। आज़ादी की ख़्वाहिश इतनी आसानी से दिल से नहीं मिटती। पहाड़ और जंगल में रहनेवाले आज़ाद जानवरों का दम घर की चहारदीवारी में घुटता है, तो काँटों से घिरे हुए खेत में भी उन्हें चैन नसीब नहीं होता। क़ैद-क़ैद सब एक-सी। थोड़े दिन के लिये चाहे ध्यान बैठ जाय, मगर फिर पहाड़ और जंगल याद आते हैं और क़ैदी अपनी रस्सी तुड़ाने की फ़िक्र करता है। अब्बूख़ाँ का ख़्याल ठीक न था कि चाँदनी पहाड़ की हवा भूल गयी है।

एक दिन सुबह-सुबह जब सूरज अभी पहाड़ के पीछे ही था कि चाँदनी ने पहाड़ की तरफ़ नज़र की। मुँह जो जुगाली की वजह से चल रहा था, रुक गया और चाँदनी ने दिल में कहा—वह पहाड़ की चोटियाँ कितनी ख़ूबसूरत हैं। वहाँ की हवा और यहाँ की हवा का क्या मुक़ाबिला? फिर वहाँ उछलना, कूदना, ठोकरें खाना और यहाँ हर वक़्त बँधे रहना! गर्दन में

आठों पहर यह कम्बख़्त रस्सी! ऐसे घरों में गधे और ख़च्चर भले ही चुग लें, हम बकरियों को तो ज़रा बड़ा मैदान चाहिये।

इस ख़्याल का आना था और चाँदनी अब वह पहली चाँदनी न थी। न उसे हरी-भरी घास अच्छी लगती थी, न पानी मज़ा देता था। न अब्बूख़ाँ की लम्बी दास्तानें उसे भाती थीं। रोज़-ब-रोज़ दुबली होने लगी। दूध घटने लगा। हर वक्त मुँह पहाड़ की तरफ़ रहता। रस्सी को खींचती और अजब दर्द-भरी आवाज़ से 'में-में' चिल्लाती। अब्बूख़ाँ समझ गये, हो-न-हो कोई बात ज़रूर है; लेकिन यह समझ में नहीं आता था कि क्या? एक दिन सुबह जब अब्बूख़ाँ ने दूध दुह लिया तो चाँदनी ने उनकी तरफ़ मुँह फेरा और अपनी बकरियोंवाली ज़बान में कहा—अब्बू मियाँ, मैं अब तुम्हारे पास रहूँगी तो मुझे बड़ी बीमारी हो जायगी। मुझे तो तुम पहाड़ ही में चली जाने दो।

अब्बूख़ाँ बकरियों की ज़बान समझने लगे थे। चिल्लाकर बोले—या अल्लाह! यह भी जाने को कहती है, यह भी! हाथ के थरथराने से मिट्टी की लुटिया, जिसमें दूध दुहा था, हाथ से गिरी और चूर-चूर हो गयी।

अब्बूख़ाँ वहीं घास पर बकरी के पास बैठ गये और निहायत ग़मगीन आवाज़ से पूछा—क्यों बेटी चाँदनी, तू भी मुझे छोड़ना चाहती है?

चाँदनी ने जवाब दिया—हाँ अब्बू मियाँ, चाहती तो हूँ!

"अरे क्या तुझे चारा नहीं मिलता या दाना पसन्द नहीं? बनिये ने घुने दाने मिला दिये हैं? मैं आज ही और दाना ले आऊँगा।"

"नहीं-नहीं मियाँ, दाना की कोई तकलीफ़ नहीं।"—चाँदनी ने जवाब दिया।

"तो फिर क्या रस्सी छोटी है? मैं और लम्बी कर दूँगा।"

चाँदनी ने कहा—इससे क्या फ़ायदा?

"तो आख़िर फिर क्या बात है, तू चाहती क्या है?"

चाँदनी ने जवाब दिया—कुछ नहीं, बस मुझे तो पहाड़ में जाने दो।

अब्बूखाँ ने कहा—अरी कम्बख़्त, तुझे यह ख़बर है कि वहाँ भेड़िया रहता है, वह जब आयेगा, तो क्या करेगी?

चाँदनी ने जवाब दिया—अल्लाह ने दो सींग दिये हैं, उससे उसे मारूँगी।

"हाँ-हाँ ज़रूर!"—अब्बूखाँ बोले—भेड़िये पर तेरे सींगों ही का तो असर होगा! वह तो मेरी कई बकरियाँ हड़प कर

चुका है। उनके सींग तुझसे बहुत बड़े थे। तू तो कल्लू को जानती नहीं है, वह यहाँ पिछले साल थी। बकरी काहे को थी, हिरन थी हिरन! काली हिरन!! रात-भर सींगों से भेड़िये के साथ लड़ी; मगर फिर सुबह होते-होते उसने दबोच ही लिया और खा गया।

चाँदनी ने कहा—अरे-रे-रे! बेचारी कल्लू; मगर ख़ैर, अब्बू मियाँ, इससे क्या होता है, मुझे तो तुम पहाड़ में जाने ही दो!

अब्बूख़ाँ कुछ झुँझलाये और बोले—या अल्लाह, यह भी जाती है! मेरी एक बकरी और उस कम्बख़्त भेड़िये के पेट में जाय; मगर नहीं-नहीं, मैं इसे तो ज़रूर बचाऊँगा। कम्बख़्त, अहसान-फ़रामोश, तेरी मरज़ी के ख़िलाफ़ तुझे बचाऊँगा। अब तो तेरा इरादा मालूम हो गया है। अच्छा, बस चल, तुझे कोठरी में बाँधा करूँगा, नहीं तो मौक़ा पाकर चल देगी।

अब्बूख़ाँ ने आकर चाँदनी को एक कोने की कोठरी में बन्द कर दिया और ऊपर से जंजीर चढ़ा दी; मगर गुस्से और झुँझलाहट में कोठरी की खिड़की बन्द करना भूल गये। इधर इन्होंने कुंडी चढ़ायी, उधर चाँदनी खिड़की में से उचककर बाहर! यह जा, वह जा।

चाँदनी पहाड़ पर पहुँची, तो उसकी ख़ुशी का क्या पूछना था। पहाड़ पर पेड़ उसने पहले भी देखे थे; लेकिन आज उनका

और ही रंग था। उसे ऐसा मालूम होता था कि सब-के-सब खड़े हुए उसे मुबारकबाद दे रहे हैं कि फिर हममें आ मिली।

इधर-उधर सेवती के फूल मारे ख़ुशी के खिलखिलाकर हँस रहे थे, कहीं ऊँची-ऊँची घास उससे गले मिल रही थी। मालूम होता था कि सारा पहाड़ मारे ख़ुशी के मुस्करा रहा है और अपनी बिछुड़ी हुई बच्ची के वापस आने पर फूला नहीं समाता। चाँदनी की ख़ुशी का हाल कोई क्या बताये। न चारों तरफ़ काँटों की बाड़, न खूँटा, न रस्सी। और चारा—वह जड़ी-बूटियाँ कि अब्बूखाँ ग़रीब अपनी सारी मुहब्बत और स्नेह के होते हुए भी न ला सकते।

चाँदनी कभी इधर उछलती, कभी उधर। यहाँ से कूदी, वहाँ फाँदी। कभी चट्टान पर है, कभी खड्डे में। इधर ज़रा फिसली, फिर सँभली। एक चाँदनी के आने से सारे पहाड़ में रौनक-सी आ गयी थी। ऐसा मालूम होता था कि अब्बूखाँ की दस-बारह बकरियाँ छूटकर यहाँ आ गयी हैं।

एक दफ़ा घास पर मुँह मारकर जो ज़रा सिर उठाया तो चाँदनी की नज़र अब्बूखाँ के मकान और उस काँटोंवाले घेरे पर पड़ी। उन्हें देखकर ख़ूब हँसी और दिल में कहने लगी—या ख़ुदा, कोई देखे तो कितना ज़रा-सा मकान है और कैसा छोटासा घर। या अल्लाह, मैं इतने दिन उसमें कैसे रही! उसमें आख़िर

समाती कैसे थी—पहाड़ की चोटी पर से उस नन्हीं-सी जान को नीचे सारी दुनिया हेच नज़र आती थी।

चाँदनी के लिए यह दिन भी अजीब था। दोपहर तक इतनी उछली-कूदी कि शायद सारी उम्र में इतनी उछली-कूदी न होगी। दोपहर-ढले उसे पहाड़ी बकरियों का एक गल्ला दिखायी दिया। गल्ले की बकरियों ने उसे ख़ुशी-ख़ुशी अपने पास बुलाया और उससे हाल-अहवाल पूछा। गल्ले में कुछ जवान बकरे भी थे, उन्होंने भी चाँदनी की बड़ी ख़ातिर-तवाज़ा की, बल्कि उसमें एक बकरा था, जरा काले-काले रंग का, जिसपर कुछ सफ़ेद टप्पे थे। वह चाँदनी को भी अच्छा लगा और यह दोनों बहुत देर तक इधर-उधर फिरते रहे। उनमें न-जाने क्या-क्या बातें हुईं। और कोई था नहीं, एक सोता पानी का बह रहा था, उसने सुनी होंगी। कभी कोई वहाँ जाय और उस सोते से पूछे, तो शायद कुछ पता लगे और फिर भी क्या ख़बर, वह सोता भी शायद न बताये!

ख़ैर, बकरियों का गल्ला तो न मालूम किधर चला गया। वह जवान बकरा भी इधर-उधर घूमकर अपने साथियों में जा मिला।

चाँदनी को भी अभी आज़ादी की इतनी ख़्वाहिश थी कि उसने गल्ले के साथ होकर अभी से अपने ऊपर पाबन्दियाँ लेना गवारा न किया और एक तरफ़ चल दी। शाम का वक्त हुआ।

ठण्डी हवा चलने लगी। सारा पहाड़ लाल-सा हो गया और चाँदनी ने सोचा, ओह हो, अभी से शाम?

नीचे अब्बूखाँ का घर और वह काँटोंवाला घर—दोनों कुहरे में छिप गये। नीचे कोई चरवाहा अपनी बकरियों को बाड़े में बन्द करने के लिए जा रहा था, उनकी गर्दन की घंटियाँ बज रही थीं। चाँदनी उस आवाज़ को ख़ूब पहचानती थी। उसे सुनकर उदास-सी हो गयी। होते-होते अँधेरा होने लगा और पहाड़ में एक तरफ़ से आवाज़ आयी—खूँ-खूँ!

यह आवाज़ सुनकर चाँदनी को भेड़िये का ख़्याल आया। दिन-भर एक दफ़ा भी उसका ध्यान उधर न गया था। पहाड़ के नीचे से एक सीटी और बिगुल की आवाज़ आयी। यह बेचारे अब्बूख़ाँ थे, जो आख़िरी कोशिश कर रहे थे कि उसे सुनकर चाँदनी फिर लौट आये। इधर से यह कह रहे थे—"लौट आ, लौट आ।" उधर से दुश्मन-जान भेड़िये की आवाज़ आ रही थी।

चाँदनी के जी में कुछ तो आयी कि लौट चलें; लेकिन उसे खूँटा याद आया, रस्सी याद आयी, काँटों का घर याद आया। और उसने सोचा कि उस ज़िन्दगी से यहाँ की मौत अच्छी। आख़िर को सीटी और बिगुल की आवाज़ बन्द हो गयी। पीछे से पत्तों की खड़खड़ाहट सुनायी दी। चाँदनी ने मुड़कर देखा तो दो

कान दिखायी दिये सीधे खड़े हुए, और दो आँखें, अंधेरे में चमक रही थीं। मेड़िया पहुँच गया था।

मेड़िया ज़मीन पर बैठा था, नज़र बेचारी बकरी पर जमी थी। उसे इत्मीनान था, जल्दी न थी, ख़ूब जानता था कि अब कहाँ जाती है! बकरी ने जो उसकी तरफ़ रुख़ किया, तो यह मुस्कराये और बोले—" ओह-ओ! अब्बूख़ाँ की बकरी है। ख़ूब खिला-खिलाकर मोटा किया है।" यह कहकर उसने अपनी लाल-लाल ज़बान, अपने नीले-नीले होठों पर फेरी। चाँदनी को कल्लू का क़िस्सा याद आया, जो अब्बूख़ाँ ने बताया था और उसने सोचा कि मैं क्यों ख़्वाहमख़्वाह रात-भर लड़कर सुबह जान दूँ, अभी क्यों न अपने को सुपुर्द कर दूँ? लेकिन फिर ख़्याल किया कि नहीं। अपना सिर झुकाया, सींग आगे को किये और पैंतरा बदलकर मेड़िये के मुक़ाबिले आयी कि बहादुरों का यही स्वभाव है! कोई यह न समझे कि चाँदनी अपनी बिसात न जानती थी, और मेड़िये की ताक़त का अन्दाज़ा उसे न था। वह ख़ूब जानती थी कि बकरियाँ मेड़िये को नहीं मार सकतीं। वह तो सिर्फ़ यह चाहती थी कि अपनी बिसात के मुताबिक़ मुक़ाबिला कर ले। जीत-हार पर अपना काबू नहीं। वह अल्लाह के हाथ है, मुक़ाबिला ज़रूरी है। जी में यह सोचती थी कि देखूँ, मैं कल्लू की तरह रातभर मुक़ाबिला कर सकती हूँ या नहीं।

कुछ देर जब गुज़र गयी तो भेड़िया बढ़ा। चाँदनी ने भी सींग सँभाले और वह हमले किये कि भेड़िये का ही जी जानता होगा। दसों मरतबा उसने भेड़िये को पीछे रेल दिया। सारी रात इसीमें गुज़री। कभी-कभी चाँदनी ऊपर आसमान की तरफ़ देख लेती और सितारों से आँखों-आँखों में कह देती—ऐ! कहीं इसी तरह सुबह हो जाय!

सितारे एक-एक करके गायब हो गये। चाँदनी ने आख़िरी वक्त़ में अपना ज़ोर दुगुना कर दिया। भेड़िया भी तंग आ गया था कि दूर से एक रोशनी-सी दिखायी दी। एक मुर्ग़ ने कहीं से बाँग दी। नीचे बस्ती में मस्जिद से अज़ान की आवाज़ आयी। चाँदनी ने दिल में कहा कि अल्लाह तेरा शुक्र है। मैंने अपने बस-भर मुकाबिला किया, अब तेरी मरज़ी! मुअज्ज़न आख़िरी दफ़ा अल्लाह अकबर कह रहा था कि चाँदनी बेदम ज़मीन पर गिर पड़ी। उसका सफ़ेद बालों का लिबास ख़ून से बिलकुल सुर्ख़ था। भेड़िये ने उसे दबोच लिया और खा गया। दरख़्त पर चिड़ियाँ बैठी देख रही थीं। उनमें इसपर बहस हो रही है कि जीत किसकी हुई। बहुत कहती हैं कि भेड़िया जीता। एक बूढ़ी-सी चिड़िया है, वह कहती है—चाँदनी जीती!

कठिन शब्दों का अर्थ

नस्ल - जाति।	**कम्बख़्त** - दुष्ट, पाजी।
बदनसीब - अभागा।	**तनहाई** - अकेलापन।

हिल जाय - मिल जाय ।
रुख - ओर, मुख ।
तराश - छीलना ।
आशिक - आसक्त ।
आज़ादी - स्वतन्त्रता ।
ख्वाहिश - अभिलाषा ।
दास्तान - कहानी, क़िस्सा ।
ग़मगीन - रंजीदा, दुखित ।
घुने दाने - कीड़ों के खाये हुए दाने ।
अहसान-फरामोश - कृतघ्न, उपकार न माननेवाला ।
मरज़ी - इच्छा ।
खिलाफ़ - उलटा, प्रतिकूल ।
मुबारकबाद - धन्यवाद ।
ग़ल्ला - झुंड, ग़ोल ।
खातिर-तवाज़ा - आदर-सत्कार ।
पाबन्दियाँ - बन्धन ।
गवारा - पसन्द, स्वीकार ।
बाड़ा - अहाता, घेरा ।
इत्मीनान - यक़ीन, विश्वास
ख्वाहमख्वाह - ज़बर्दस्ती, जान-बूझकर
बिसात - शक्ति, ताक़त ।
रेल - ढकेल ।
सितारे - तारे
बाँग - मुर्गे की आवाज़ ।
अज़ान - नमाज़ पढ़ने के लिये तैयार होने की आवाज़ ।
शुक्र - धन्य ।
मुअज़्ज़न - अज़ान देनेवाला ।
लिबास - पोशाक ।
बहस - विवाद ।

हिमालय की वेदी पर

श्री श्यामनारायण कपूर

[श्री श्यामनारायण कपूर बी. एस-सी. विज्ञान विषय के प्रसिद्ध लेखक हैं। पत्रिकाओं में भी आपके काफ़ी लेख छपते रहते हैं। इधर आप वैज्ञानिक कहानियाँ तथा वैज्ञानिक घटनाओं के वर्णन भी लिखने लगे हैं। इनकी भाषा, विषय के लायक सरल होती है। प्रस्तुत लेख आपकी 'हिमालय की वेदी पर' नामक पुस्तक से लिया गया है।

१९२४ के आरम्भ में गौरीशंकर पर चढ़ायी करने के लिये फिर एक दल संगठित किया गया। ज़्यादा यात्री हिमालय-प्रदेश के बारे में काफ़ी अनुभव प्राप्त कर चुके थे। इस दल में कुल मिलाकर तेरह अंग्रेज़ शामिल थे। इनमें अर्विन को छोड़कर बाकी सभी की उम्र ३३ से ४० वर्ष के लगभग थी। केवल अर्विन २२ वर्ष का नवयुवक था। ख़ूब स्वस्थ, धैर्यवान और साहसी। उसकी बात-बात से बुद्धिमानी टपकती थी। अकसर अनुभवी और होशियार लोगों को भी उसकी सलाह माननी पड़ती थी। मलेरी ३७ वर्ष का होते हुए भी अर्विन ही के समान नवयुवक मालूम होता था। यह दल २५ मार्च से रेल-द्वारा तिब्बत की ओर रवाना हुआ। तब से लगातार २ जून तक नाना प्रकार के कष्ट सहन करते और आपदाएँ झेलते हुए २३,८०० फ़ीट की उँचाई पर छठा पड़ाव डाला गया। नार्टन और समरवेल ने वहाँ से एवरेस्ट तक पहुँचने का निश्चय किया।

समरवेल की तन्दुरुस्ती ठीक न होते हुए भी वह बराबर आगे बढ़ता चला गया। कुलियों ने भी बड़ी जवाँमर्दी और बहादुरी का परिचय दिया। इन दोनों ने रात वहीं छठे पड़ाव में बितायी। उस समय तक विशेषज्ञों की राय थी कि २६,००० फ़ीट से अधिक ऊँचे जाने पर नींद ठीक तौर पर नहीं आती।

४ जून को सुबह तड़के उठकर चाय-पानी के बाद ऊपर चढ़ना शुरू कर दिया गया। २७,५०० फ़ीट की ऊँचाई पर पहुँचकर नार्टन की आँखों में कुछ तकलीफ़ पैदा हो गयी। उसे एक के बजाय एक साथ दो चीज़ें दिखायी देने लगीं। इससे उसके लिये एक-एक क़दम आगे बढ़ना दूभर हो गया। शुरू-शुरू में नार्टन ने अनुमान किया कि शायद बर्फ़ की चमक के कारण ऐसा हुआ हो; पर समरवेल इससे सहमत न था। पहाड़ से लौटने के कई मास बाद विशेषज्ञों ने यह राय क़ायम की कि पहाड़ी प्रदेशों में बहुत ऊँचे पहुँच जाने पर आक्सीजन की मात्रा बहुत कम हो जाती है। आँखों में तकलीफ़ पैदा होने का कारण यही कमी है।

वे लोग बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ पाते थे। नार्टन की इच्छा थी कि बीस-बीस क़दम आगे बढ़कर दम लिया जाया करे; पर तेरह क़दम भी मुश्किल से बढ़ पाते थे कि साँस फूल जाती थी। ज्यों-ज्यों ऊपर बढ़ते जाते थे, हवा की ख़ुश्की और सख़्ती भी

बढ़ती जाती थी। समरवेल पहले ही से अस्वस्थ था और खाँसी से पीड़ित था। हवा की ख़ुश्की से उसका हल्क़ सूज गया। खाँसी और ज़्यादा बढ़ गयी। लाचार होकर दस-पाँच क़दम बढ़ने के बाद ही सुस्ताने के लिये ठहर जाना पड़ता। दस मिनट तक आगे बढ़ते और फिर ठहर जाते। इसी तरह दोनों साहसी ऊपर बढ़े चले गये।

दोपहर तक दोनों व्यक्ति गौरीशंकर पर्वत के नीचे की उपत्यका में पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर समरवेल की खाँसी ने बहुत ज़ोर मारा। जैसे-जैसे ऊपर बढ़ते जाते थे, खाँसी भी विकट-रूप धारण करती जाती थी। समरवेल से और अधिक आगे न बढ़ा गया। लाचार होकर वह वहीं ठहर गया। नार्टन की आँखें ख़राब होते हुए भी वह अकेला ही आगे बढ़ता चला गया। रास्ते में मिलनेवाली बर्फ़ बड़ी मुलायम थी और नार्टन कभी घुटने तक और कभी कमर तक उसमें धँस जाता था। ढाल के कारण ऊपर बढ़ना और भी अधिक कठिन हो जाता था। प्राणों की बाजी लगाकर आगे बढ़ना होता था, पैर रपटा और जान गयी। ऐसी दुर्गम चढ़ाइयों के मौक़ों पर चढ़नेवाले लोग रस्सों से काम लेते हैं; पर नार्टन करता तो क्या? वह बेचारा बिलकुल अकेला था! रस्सा बाँधे तो किससे? थकावट बहुत बढ़ गयी थी। आँख की तकलीफ़ में कोई कमी न हुई थी, वरन् वह बढ़ती ही

जा रही थी; पर नार्टन ने इसकी कोई परवाह न की और २८,१२६ फ़ीट की ऊँचाई तक अकेला ही चढ़ता चला गया। वहाँ पहुँचते-पहुँचते एक बज चुका था। वहाँ से एवरेस्ट बहुत थोड़ी दूरी पर रह गया था; परन्तु एवरेस्ट पहुँचकर वापस आने का वक़्त बाक़ी नहीं रह गया था। लाचार होकर नार्टन ने वापस चलना ही ठीक समझा। आज तक कोई मनुष्य इससे अधिक ऊँची जगह पर जाकर ज़िन्दा नहीं लौट सका है।

नौ बजे रात तक सब लोग चौथे पड़ाव में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचते-पहुँचते नार्टन की पीड़ा बहुत ज़्यादा बढ़ गयी और दो दिन तक वह बिलकुल अन्धा-सा रहा। उसे कुछ भी दिखायी न पड़ता था।

नार्टन की टोली के वापस आने के बाद मलेरी आधी रात तक नार्टन से बातचीत करता रहा। ६ जून को मलेरी और अर्विन कुछ कुलियों को साथ लेकर ऊपर की तरफ़ रवाना हुए। बड़े तपाक से विदा ली। सब लोगों ने उसकी सफलता की कामना की और सकुशल वापस आ जाने की प्रार्थना की; परन्तु समय की गति बड़ी विचित्र होती है। उस समय यह किसी को स्वप्न में भी गुमान न हो सकता था कि मलेरी और अर्विन की यह अंतिम भेंट है। शाम को सब लोग छठे पड़ाव में पहुँच गये। वहाँ से कुलियों को पाँचवें पड़ाव को लौटा दिया गया।

७ जून को ओडेल कुछ आदमियों को साथ लेकर पाँचवें पड़ाव में आ गया, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर वह मलेरी और अर्विन को उचित सहायता पहुँचा सके। पर होना तो कुछ और ही था। जिस समय ओडेल पाँचवें पड़ाव में पहुँचा, मलेरी अर्विन के साथ जानेवाले कुली छठे पड़ाव से वापस आ चुके थे। उनके साथ मलेरी ने एक पत्र भेजकर सूचित किया था कि वे दोनों अपना सारा सामान डेरे में ही पड़ा छोड़कर केवल आक्सीजन के दो पीपे साथ में लेकर रवाना हो गये हैं। कुतुबनुमा तक नहीं ले गये हैं। उन्होंने यह भी बतलाया था कि मौसिम अच्छा है और उनके अनुकूल है। वे लोग चढ़ायी के लिए वैसे ही मौसिम की कामना किया करते थे। अन्त में पड़ाव के सामान को ठीक कर लेने का अनुरोध किया गया था। ओडेल ने पूरे एक दिन पाँचवें पड़ाव में इन दोनों के वापस आने का इन्तज़ार किया। अगले दिन वह छठे पड़ाव की ओर रवाना हो गया। २६,१०० फ़ीट की उँचाई पर पहुँचकर ओडेल ने पर्वत-शिखर की ओर निगाह दौड़ायी। इन्द्रधनुष और बादल बिलकुल विलीन हो चुके थे। शिखर के आसपास का आसमान बिल्कुल साफ़ था। उस समय ऐसा मालूम हुआ कि कोई व्यक्ति पर्वत के निचले हिस्से की चढ़ायी तय करके ऊपर पहुँच रहा है। पर्वत की चोटी वहाँ से थोड़ी ही दूर पर थी। वह व्यक्ति अवश्य ही मलेरी या अर्विन में से कोई था। इतने में ही बादल छा गये और दोनों

मनचले वीर आँखों से ओझल हो गये। उसने अन्तिम बार इतना देखा कि वे दोनों बड़ी तेज़ी से ऊपर चढ़े चले जा रहे हैं। यह एक बजे दोपहर की बात है। दो बजे के क़रीब ओडेल छठे पड़ाव में जा पहुँचा। उस वक़्त तक हवा तेज़ हो गयी थी। डेरे में तमाम चीज़ें बिखरी पड़ी थीं। कपड़े, खाने-पीने की चीज़ें, आक्सीजन के पीपे, यन्त्र आदि इधर-उधर तितर-बितर पड़े थे। उनको देखकर ओडेल ने अनुमान लगाया कि आक्सीजन के पीपों की दुरुस्ती में काफ़ी वक़्त लगाया गया होगा। ओडेल छठे पड़ाव से और आगे बढ़ा। उसने २०० फ़ीट की ऊँचाई पर पहुँचकर फिर शिखर की ओर देखा। कोई दिखायी न दिया। सीटी बजायी, आवाज़ें दीं, चिल्लाया, पर कोई नतीजा न निकला। किसी भी तरह का उत्तर न मिला। ओडेल को मलेरी और अर्विन की मौजूदगी का कोई भी चिह्न न मिला। उसे घोर निराशा हुई। दिल बैठ गया। इसी वक़्त हवा बहुत तेज़ हो गयी। ठण्ड भी बड़ी विकट हो गयी। उससे और आगे न बढ़ा गया। किसी तरह पड़ाव तक वापस गया। साढ़े चार बजे तक वहीं दोनों का इन्तज़ार करता रहा। बहुत ज़्यादा देर होते देख वह पाँचवें पड़ाव की ओर लौट पड़ा। वहाँ पौने सात बजे तक चौथे पड़ाव में जा पहुँचा। इतनी ज़बरदस्त ऊँचाई पर जाकर वापस आना और नीचे उतरना सचमुच बड़े साहस का काम था। ओडेल से पहले और किसी ने ऐसा न किया था। अगले दिन सुबह होते

ही दूरबीन से पाँचवें और छठे पड़ाव को बड़े ग़ौर से देखा गया ; पर वहाँ कुछ भी दिखायी न दिया। तब ओडेल ने फिर ऊपर जाकर मलेरी और अर्विन की खोज करने का पक्का इरादा कर लिया। दो आदमी ओडेल के साथ भेजे गये। वहाँ पहुँचने पर भी उन मनचले वीरों का पता-ठिकाना न लगा। हवा बहुत तेज़ हो गयी थी और तेज़ झक्कड़ चलने लगा था। कभी-कभी तो इतने तेज़ झोंके आते कि खीमों तक के उखड़ जाने की नौबत आ जाती। रात को सर्दी और आँधी ने बड़ा भीषण रूप धारण कर लिया। खाना बनाना भी मुश्किल हो गया। सुबह होने पर भी झक्कड़ का वेग कुछ कम न पड़ा। सर्दी के मारे हाथ-पैर सुन्न हो जाते थे। पाँचवें पड़ाव में एक दिन तक इन्तज़ार करने के बाद भी जब कोई नतीजा न निकला तो ओडेल छठे पड़ाव की ओर बढ़ा। इस बार उसने आक्सीजन के पीपे साथ ले लिये थे ; पर उनसे विशेष लाभ न हुआ। वह गैस को बन्द करके वैसे ही चढ़ा चला गया। साँस फूल गयी थी। बड़ी मुश्किल से हाँफता हुआ छठे पड़ाव में पहुँचा। सब चीज़ें जैसी की तैसी पड़ी थीं। वहाँ किसी भी आदमी के आने के चिह्न न मिल सके। कुछ देर तक सुस्ताने के बाद उसने एक ऊँचे से टीले पर चढ़कर एवरेस्ट की ओर निगाह दौड़ायी ; मगर कोई दिखाई न पड़ा। मौसम बड़ा भीषण हो चला था। तेज़ आँधी चल रही थी और हिम-कणों से भरी हुई थी। फिर भी दो घंटे तक लगातार मलेरी और अर्विन

की खोज करता रहा; पर पता न चला। अन्त में उसे निराश होकर यह विश्वास कर लेना पड़ा कि मलेरी और अर्विन सदा के लिए हिमालय की गोद में सो गये हैं और उन्हें ढूँढ़ निकालना मानवीय शक्ति के बस की बात नहीं है। मलेरी और अर्विन ने अपने बहुमूल्य प्राण हिमालय की बलि-वेदी पर अर्पित कर दिये हैं।

ओडेल ने मलेरी और अर्विन को जिस स्थान पर ओझल होते हुए देखा था, वह हिसाब करने पर २८,२३० फ़ीट की ऊँचाई पर पाया गया। अभी तक कोई मनुष्य उससे ज़्यादा ऊंचाई पर नहीं पहुँच सका है। नार्टन २८,१०० फ़ीट की ऊँचाई तक जाकर जीवित लौट आया था। उसके आगे पर्वत-शिखर पर पहुँचने के लिए केवल ८०० फ़ीट की चढ़ायी और रह जाती है; परन्तु उस ८०० फ़ीट की चढ़ायी को तय करने के लिए भी कम-से कम १६०० फ़ीट का सफ़र करना ज़रूरी था।

यदि रास्ते में कोई विशेष कठिनाई न पड़ी होगी तो अर्विन और मलेरी एवरेस्ट शिखर पर अवश्य पहुँच गये होंगे। वापस आते समय रास्ते ही में सूर्यास्त हो गया होगा और वे दोनों बहुत ज़्यादा थके होने की वजह से छठे पड़ाव तक न लौट सके होंगे। उन्होंने शायद वहीं कहीं रास्ते में चट्टान की छाया में रात बितानी चाही होगी और अत्यन्त भीषण सर्दी के कारण वे सदा के लिए वहीं पर सोते रह गये होंगे।

कठिन शब्दों के अर्थ

अक्सर - प्राय: ।
आपदायें - विपत्तियाँ ।
झेलना - सहना ।
पड़ाव - कैंप ।
जवाँमर्दी - बहादुरी ।
विशेषज्ञ - अच्छा जानकार ।
तड़के - सवेरे ।
दूभर - मुश्किल ।
खुश्की - रूखापन ।
हलक़ - गला ।
सूजना - फूलना, to swell.
सुस्ताना - आराम लेना ।
उपत्यका - घाटी, दर्रा ।
ढाल - उतार ।
रपटा - फिसला ।
वरन् - बल्कि ।
कामना - इच्छा (wish) ।
गुमान - अनुमान, सन्देह ।
कुतुबनुमा - दिशा बतानेवाला यंत्र । (compass)
शिखर - चोटी ।
दिल बैठ जाना - निराशा होना ।
मनचले - शौकीन ।
दूरबीन - दूरी देखने का यंत्र ।
झक्कड़ - ज़ोर की आँधी ।
खीमा - डेरा (tent) ।
सुन्न - प्राणहीन ।
हिमकण - बर्फ़ के छोटे-छोटे टुकड़े ।
मानवीय - आदमी की ।
साया - छाया ।

ईदगाह

मुंशी प्रेमचन्द

[हिन्दी या उर्दू जाननेवाला हरएक आदमी स्वर्गीय श्री प्रेमचंदजी के नाम से परिचित है। उनकी कहानियाँ और उनके उपन्यास सारे हिन्दुस्तान में पढ़े जाते हैं। दक्षिण की भाषाओं में भी उनकी कई कहानियाँ और उपन्यासों के अनुवाद छप चुके हैं। ईदगाह कहानी उन्हीं की लिखी हुई है।]

रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आयी है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक़ है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर में सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गये हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज़्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसीने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह

जाने की ख़ुशी उनके हिस्से की चीज़ है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज़ ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गयी। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिन्ताओं से क्या प्रयोजन! सेवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवैयाँ खायँगे। वह क्या जानें, अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या ख़बर कि चौधरी आज आँखें बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाय। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना ख़ज़ाना निकालकर गिनते हैं, और ख़ुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक, दो, दस, बारह! उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास एक, दो, तीन, आठ, नौ, पन्द्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीज़ें लायेंगे—खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या। और सबसे ज़्यादा प्रसन्न है हामिद, वह चार-पाँच साल का ग़रीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैज़े की भेंट हो गया और माँ न-जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गयी। किसी को पता न चला क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुननेवाला था। दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से बिदा हो गयी। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही

प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गये हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आयेंगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीज़ें लाने गयी हैं; इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आयेंगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा, महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे! अभागिनी अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती? इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं है; लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल-बल लेकर आये, हामिद की आनन्द-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्मा, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है। उसे कैसे अकेले मेले में जाने दे। उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाय तो क्या हो। नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्ही-सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे! पैर में छाले पड़ जायँगे। जूते भी तो नहीं हैं? वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद में ले लेगी; लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकायेगा? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घण्टों चीज़ें जमा करते लगेंगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फ़हीमन के कपड़े सिये थे। कुल आठ आने मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए; लेकिन कल ग्वालिन सिर पर सवार हो गयी तो क्या करेगी। हामिद के लिए कुछ नहीं है तो दो पैसे का रोज़ दूध तो चाहिये ही। अब कुल दो आने बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटुवे में। यही तो बिसात है और ईद का त्योहार, अल्लाह ही बेड़ा पार लगावे। धोबिन और नाइन और मेहतरानी और चुड़िहारिन सभी आयेंगी। सभी को सेवैयाँ चाहिये और थोड़ा किसी की आँखों नहीं लगता। किस-किससे मुँह चुरायेगी? और मुँह क्यों चुराये? साल-भर का त्योहार है। ज़िन्दगी ख़ैरियत से रहे, उनकी तक़दीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को ख़ुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जायँगे।

गाँव से मेला चला। और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सब-के-सब दौड़कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथवालों का इन्तज़ार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं? हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गये हैं। वह कभी थक सकता है! शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठाकर आम पर निशाना लगाता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फ़र्लांग पर हैं। ख़ूब हँस रहे हैं। माली को कैसा उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कॉलेज है; यह क्लबघर है। इतने बड़े कॉलेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे! सब लड़के नहीं हैं जी! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। इतने बड़े हो गये, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न-जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर? हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिल्कुल तीन कौड़ी के, रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुरानेवाले। इस जगह भी उसी तरह के होंगे और क्या? क्लबघर में जादू होता है सुना है, यहाँ मुर्दों की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े

तमाशे होते हैं; पर किसी को अन्दर नहीं जाने देते। और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं। मूँछों-डाढ़ीवाले। और मेमें भी खेलती हैं, सच। हमारी अम्माँ को वह दे दो, क्या नाम है। बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें; घुमाते ही लुढ़क जायँ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मी-जान का तो हाथ काँपने लगे, अल्लाह-क़सम!

मोहसिन बोला—चलो, मनों आटा पीस डालती हैं। ज़रा-सा बैट पकड़ लेंगी, तो हाथ काँपने लगेंगे! सैकड़ों घड़े पानी रोज़ निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों-तले अँधेरा आ जाय।

महमूद—लेकिन दौड़तीं तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकतीं।

मोहसिन—हाँ, उछलकूद नहीं सकतीं; लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गयी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी तो अम्माँ इतना तेज़ दौड़ीं कि मैं उन्हें न पा सका, सच!

आगे चले। हलवाइयों की दुकानें शुरू हुईं। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है। देखो न, एक-एक दुकान पर मनों होंगी। सुना है, रात को जिन्नात

आकर ख़रीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दुकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह सब तुलवा लेता है और सचमुच के रुपये देता है, बिलकुल ऐसे ही रुपये।

हामिद को यक़ीन न आया—ऐसे रुपये जिन्नात को कहाँ से मिल जायँगे?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रुपयों की कमी? जिस ख़ज़ाने में चाहें चले जायँ। लोहे के दरवाज़े तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में। हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे ख़ुश हो गये, उसे टोकरों जवाहरात दे दिये। अभी यहाँ बैठे हैं, पाँच मिनट में कहो कलकत्ता पहुँच जायँ।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे?

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी? ज़मीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे; मगर चाहें तो एक लोटे में घुस जायँ।

हामिद—लोग उन्हें कैसे ख़ुश करते होंगे? कोई मुझे वह मन्तर बता दे तो एक जिन्न को ख़ुश कर लूँ।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता; लेकिन चौधरी साहब के क़ाबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज़ चोरी जाय,

चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमेराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला। तब झक मारकर चौधरी के पास गये। चौधरी ने तुरन्त बता दिया, मवेशीख़ाने में है, और वहीं मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की ख़बरें दे जाते हैं।

अब सबकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस-लाइन है। यहीं सब कानिस-टिबल क़वायद करते हैं। रैटन! फाय फो! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते हैं, नहीं तो चोरियाँ हो जायँ।

मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबल पहरा देते हैं! तभी तुम बहुत जानते हो। अजी हज़रत, ये ही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं, चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो! जागते रहो!' पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने रुपये आते हैं। मेरे मामूँ एक थाने में कानिसटिबल हैं। बीस रुपये महीना पाते हैं; लेकिन पचास रुपये घर भेजते हैं। अल्लाह क़सम! मैंने एक बार पूछा था कि मामूँ, आप इतने रुपये कहाँ से लाते हैं? हँसकर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—

हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लायें। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाय।

हामिद ने पूछा—ये लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा? पकड़नेवाले तो ये लोग ख़ुद हैं; लेकिन अल्लाह इन्हें सज़ा भी ख़ूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े दिन हुए, मामूँ के घर में आग लग गयी। सारी लेई-पूँजी जल गयी। एक बर्तन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोये, अल्लाह क़सम, पेड़ के नीचे। फिर न-जाने कहाँ से एक सौ क़र्ज़ लाये तो बर्तन भाँड़े आये।

हामिद—एक सौ पचास से ज़्यादे होते हैं?

"कहाँ पचास, कहाँ एक सौ! पचास एक थैली-भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आवें।"

अब बस्ती घनी होने लगी थी। ईदगाह जानेवालों की टोलियाँ नज़र आने लगीं। एक-से-एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए, कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग। ग्रामीणों का यह छोटा-सा दल, अपनी विपन्नता से बेख़बर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के

लिये नगर की सभी चीज़ें अनोखी थीं। जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते। और पीछे से बार-बार हार्न की आवाज़ होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नज़र आया। ऊपर इमली के घने वृक्षों का साया है। नीचे पक्का फ़र्श है, जिस पर जाजिम बिछा हुआ है। और रोज़ेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न-जाने कहाँ तक चली गयी हैं, पक्के जगत के नीचे तक, जहाँ जाजिम भी नहीं है। नये आनेवाले आकर पीछे की क़तार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी वज़ू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गये। कितना सुन्दर संचालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब-के-सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जायँ, और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनन्तता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानन्द से भर देती थीं, मानो भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोये हुए है।

नमाज़ ख़त्म हो गयी है। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौनों की दुकानों पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी ज़मीन पर गिरते हुए। यह चर्ख़ी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छड़ों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पचीस चक्करों का मज़ा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं! अपने कोष का एक-तिहाई ज़रा-सा चक्कर खाने के लिये नहीं दे सकता।

सब चर्ख़ियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दुकानों की क़तार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं— सिपाही और गुजरिया, और राजा, और वकील और भिश्ती और धोबिन और साधू। वाह! कितने सुन्दर खिलौने हैं! अब बोला ही चाहते हैं! महमूद सिपाही लेता है, ख़ाकी वर्दी और लाल पगड़ीवाला, कन्धे पर बन्दूक़ रखे हुए, मालूम होता है, अभी क़वायद किये चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए है, मशक

का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उड़ेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उनके मुख पर, काला चोग़ा, नीचे सफ़ेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी की सुनहली ज़ञ्जीर, एक हाथ में कानून का पोथा लिये हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किये चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं। इतने महँगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े, तो चूर-चूर हो जाय। ज़रा पानी पड़े तो सारा रङ्ग धुल जाय। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के!

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज़ पानी दे जायगा, साँझ-सवेरे।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आयेगा, तो फ़ौरन बन्दूक फ़ैर कर देगा।

नूरे—और मेरा वकील ख़ूब मुक़दमा लड़ेगा।

सम्मी—और मेरी धोबिन रोज़ कपड़े धोयेगी।

हामिद खिलौनों की निन्दा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जायँ; लेकिन ललचायी हुई आँखों से

खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि ज़रा देर के लिये उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं; लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक़ है। हामिद ललचता रह जाता है।

खिलौनों के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेउड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाबजामुन, किसी ने सोहन-हलवा। मज़े से खा रहे हैं। हामिद उनकी विरादरी से पृथक् है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचायी आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद, यह रेउड़ी ले जा, कितनी ख़ुशबूदार है!

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है; लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेउड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेउड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी ख़ूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा, अबकी ज़रूर देंगे हामिद, अल्लाह-क़सम! ले जाओ।

हामिद—रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं?

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं! तीन पैसे में क्या-क्या लोगे?

महमूद—हमसे गुलाबजामुन ले जाओ हामिद! मोहसिन बदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते?

महमूद—हम समझते हैं इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे ख़र्च हो जायँगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खायेगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दुकानें लोहे की चीज़ों की हैं। कुछ गिलट और नक़ली गहनों की। लड़कों के लिये यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दुकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे ख़याल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती हैं, तो हाथ जल जाता है; अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होंगी। फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज़ हो जायगी।

खिलौनों से क्या फ़ायदा। व्यर्थ में पैसे ख़राब होते हैं। ज़रा देर ही तो ख़ुशी होती है। फिर तो खिलौनों को कोई आँख उठाकर नहीं देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूटकर बराबर हो जायँगे, या छोटे बच्चे जो मेले में नहीं आये हैं, ज़िद करके ले लेंगे और तोड़ डालेंगे। चिमटा कितनी काम की चीज़ है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो। कोई आग माँगने आवे तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फ़ुरसत है कि बाज़ार आयें, और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं? रोज़ हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गये हैं। सबील पर सब-के-सब शरबत पी रहे हैं। देखो, सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा तो पूछूँगा। खायँ मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुंसियाँ निकलेंगी, आप ही ज़बान चटोरी हो जायगी। तब घर से पैसे चुरायेंगे और मार खायेंगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों ख़राब होगी! अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है! हज़ारों दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखायेंगी। सारे गाँव में चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौनों

पर कौन इन्हें दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिज़ाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिज़ाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने, और खायँ मिठाइयाँ। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिज़ाज क्यों सहूँ? ग़रीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाता। आख़िर अब्बाजान कभी-न-कभी आयेंगे ही। अम्माँ भी आयेंगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा, कितने खिलौने लोगे? एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवड़ियाँ लीं तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सब-के-सब ख़ूब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें। मेरी बला से। उसने दुकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है?

दुकानदार ने उसकी ओर देखा। और कोई आदमी साथ न देखकर कहा—वह तुम्हारे काम का नहीं है जी!

"बिकाऊ है कि नहीं?"

"बिकाऊ क्यों नहीं है? और यहाँ क्यों लाद लाये हैं?"

"तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है?"

"छः पैसे लगेंगे।"



हामिद का दिल बैठ गया।

"ठीक-ठीक बताओ।"

"ठीक पाँच पैसे लूँगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।"

हामिद ने कलेजा मज़बूत करके कहा—तीन पैसे लोगे?

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दुकानदार की घुड़कियाँ न सुने।

लेकिन दुकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दीं। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कन्धे पर रखा, मानो बन्दूक़ है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। ज़रा सुनें, सब-के-सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा—यह चिमटा क्यों लाया पगले? इसे क्या करेगा?

हामिद ने चिमटे को ज़मीन पर पटककर कहा—ज़रा अपना भिश्ती ज़मीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जायँ बचा की!

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं? अभी कन्धे पर रखा, बन्दूक हो गया। हाथ में ले लिया, फ़क़ीरों का चिमटा हो गया,

चाहूँ तो इससे मँजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाय। तुम्हारे खिलौने कितना ही ज़ोर लगावें, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है चिमटा!

सम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खँजरी से बदलोगे? दो आने की है।

हामिद ने खँजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खँजरी का पेट फाड़ डाले। बस एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढबढब बोलने लगी। ज़रा-सा पानी लग जाय तो ख़तम हो जाय। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफ़ान में, बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया; लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं। फिर मेले से दूर निकल आये हैं, नौ कब के बज गये, धूप तेज़ हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से ज़िद भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक; इसीलिये बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बालकों के दो दल हो गये हैं। मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ़ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ़। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हो गया। दूसरे पक्ष से जा

मिला; लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी हामिद से एक-एक, दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फ़ौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाय, तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जायँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बन्दूक़ छोड़कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाय, चोगे में मुँह छिपाकर ज़मीन पर लेट जायँ; मगर यह चिमटा, यह बहादुर रुस्तमे-हिन्द लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने एँड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर कहा—अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता।

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिश्ती को एक डाँट बतायेगा, तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया; पर महमूद ने कुमक पहुँचायी—अगर बचा पकड़ जायँ तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब ही के पैरों पड़ेंगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा—हमें पकड़ने कौन आयेगा?

नूरे ने अकड़कर कहा—यह सिपाही बन्दूक़वाला!

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा—ये बेचारे हम बहादुर रुस्तमे-हिन्द को पकड़ेंगे! अच्छा लाओ, अभी ज़रा कुश्ती हो जाय। इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे। पकड़ेंगे क्या बेचारे!

मोहसिन को एक नयी चोट सूझ गयी—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज़ आग में जलेगा।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा; लेकिन यह बात नहीं हुई। हामिद ने तुरन्त जवाब दिया—आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे ये वकील, सिपाही और भिश्ती लेडियों की तरह घर में घुस जायँगे। आग में कूदना वह काम है, जो यह रुस्तमे-हिन्द ही कर सकता है।

महमूद ने एक ज़ोर लगाया—वकील साहब कुरसी-मेज़ पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावर्चीख़ाने में ज़मीन पर पड़ा रहेगा।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया। कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने। चिमटा बावर्चीख़ाने में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है?

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—मेरा चिमटा बावर्चीख़ाने में नहीं रहेगा।

वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हें ज़मीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ बनी नहीं। ख़ासी गाली-गलौज थी; लेकिन क़ानून को पेट में डालनेवाली बात छा गयी। ऐसी छा गयी कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गये, मानो कोई धेलचा कंकौआ किसी गण्डेवाले कंकौए को काट गया हो। क़ानून मुँह से बाहर निकलनेवाली चीज़ है। उसको पेट के अन्दर डाल दिया जावे, बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रुस्तमे-हिन्द है। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी, किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारनेवालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने ख़र्च किये; पर कोई काम की चीज़ न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रङ्ग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा? टूट-फूट जायेंगे। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों!

सन्धि की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा—ज़रा अपना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किये।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया, और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आये। कितने ख़ूबसूरत खिलौने हैं।

हामिद ने हारनेवालों के आँसू पोंछे—मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच। यह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा; मालूम होता है, अब बोले-अब बोले!

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से सन्तोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का ख़ूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा।

महमूद—दुआ को लिये फिरते हो। उलटे मार न पड़े। अम्माँ ज़रूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देखकर किसी की माँ इतनी ख़ुश न होंगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होंगी। तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन

पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल ज़रूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रुस्तमे-हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह!

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दिये। महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गये। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

(३)

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गयी। मेलेवाले आ गये। मोहसिन की छोटी बहन ने दौड़कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भाई-बहन में मार-पीट हुई। दोनों खूब रोये। उनकी अम्माँ यह शोर सुनकर बिगड़ीं और दोनों को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाये।

मियाँ नूरे के वकील का अन्त उनकी प्रतिष्ठानुकूल इससे ज़्यादा गौरवमय हुआ। वकील ज़मीन पर या ताक़ पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो खूँटियाँ गाड़ी गयीं। उन पर लकड़ी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर काग़ज़ का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति इस सिंहासन पर बिराजे। नूरे ने

उन्हें पंखा झलना शुरू किया। अदालतों में ख़स की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो! क़ानून की गर्मी दिमाग़ पर चढ़ जायगी कि नहीं? बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नहीं पंखे की हवा से, या पंखे की चोट से, वकील साहब स्वर्ग-लोक से मर्त्यलोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया! फिर बड़े ज़ोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूरे पर डाल दी गयी।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया; लेकिन पुलीस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आयी, उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिथड़े बिछाये गये, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटें। नूरे ने यह टोकरी उठायी और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ़ से 'छोनेवाले, जागते लहो!' पुकारते चलते हैं; मगर रात तो अँधेरी होनी ही चाहिये। महमूद को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक लिये ज़मीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है।

महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है।

उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फ़ानन जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिये। गूलर का दूध आता है। टाँग जोड़ दी जाती है; लेकिन सिपाही को ज्यों ही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे देती है। शल्य-क्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है! एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफ़ा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपान्तर चाहो कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिये। अमीना उसकी आवाज़ सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

"यह चिमटा कहाँ था?"

"मैंने मोल लिया है।"

"कै पैसे में?"

"तीन पैसे दिये।"

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या, यह चिमटा! सारे मेले में तुझे और कोई चीज़ न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया?

हामिद ने अपराधी-भाव से कहा—तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं; इसलिये मैंने इसे ले लिया।

बुढ़िया का क्रोध तुरन्त स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग और कितना सद्भाव और कितना विवेक है। दूसरों को खिलौने लेते और मिठाइयाँ खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा। इतना ज़ब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चा हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गयी। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता!

कठिन शब्दों का अर्थ

रमज़ान - मुसलमानी महीने का एक नाम

ईद - मुसलमानों का सबसे बड़ा त्योहार।

अजीब - अनोखा।

रौनक़ - चमक।

ईदगाह - ईद के दिन जिस जगह बहुत से मुसलमान मिलकर नमाज़ पढ़ते हैं वहाँ एक मेला लग जाता है, उसे ईदगाह कहते हैं।

प्रयोजन - मतलब।

बदहवास - व्याकुल।

नियामतें - अच्छी अच्छी चीज़ें।

अरमान - अभिलाषा, हौसला।

विध्वंस - नाश।

कचोटना - दुखित होना।

छाले - फफोले।

बटुवे - थैले, purse.

सलामत - अच्छी तरह, कुशलपूर्वक।

जिन्नात - जिन, प्रेत।

मवेशीख़ाना - काँजी हाउस, pound.

जहान - संसार।

नादानी - मूर्खता, लड़कपन।

विपन्नता - दीनता, ग़रीबी।

वज़ू - नमाज़ पढ़ने के वक्त मुँह-हाथ धोना।

गुजरिया - ग्वालिन; गूजर जाति की स्त्री।

क़वायद - कसरत, व्यायाम।

खिसियाना - झेंपना, लजाना।

बदमाश - दुष्ट, शरारती।

दुआएँ - आशीर्वाद।

संगियों - साथियों।

उपेक्षा - बेपरवाही।

तूफ़ान - आँधी।

आघातों - चोटों।

आतंकित - भयभीत।

कुमक - सहायता, मदद।

लाजवाब - निरुत्तर।

सूरमा - वीर, बहादुर।

चोला - शरीर।

साफ़ा - पगड़ी।

प्रगल्भ - हाज़िर जवाब।

ज़ब्त - सब्र, बर्दाश्त।

दामन - आँचल।

इब्नबतूता की भारत-यात्रा

आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

[इस लेख के लेखक श्री पं. महावीर प्रसादजी द्विवेदी हैं। आप हिन्दी के आचार्य थे। आपने अपना सारा जीवन हिन्दी की सेवा में लगाया। रेल्वे कंपनी की बड़ी नौकरी छोड़कर ग़रीबी धारण कर 'सरस्वती' के संपादक बने। आपने हिन्दी को जितना सुधारा और संवारा उतना और कौन कर सकता है! आपने सैकड़ों युवकों को प्रोत्साहन देकर हिन्दी में लिखने की ओर खींचा। आपकी भाषा और शैली सरल होती थी। संस्कृत के सरल शब्दों का प्रयोग अधिक करते थे। आप यू. पी. जिला रायबरेली दौलतपुर के रहनेवाले थे। आपका जन्म सन् १८६४ में तथा मृत्यु सन् १९३८ ई० में हुई।]

मुसलमान यात्री इब्नबतूता का आसन उन सब यात्रियों से ऊँचा है, जिन्होंने ऐसे समय में यात्रा की थी, जब न रेल थी और न आजकल के ऐसे बड़े-बड़े जहाज़ ही थे। उस समय यात्रियों को पग-पग पर बड़ी-बड़ी भयङ्कर विपत्तियों का सामना करना पड़ता था। इब्नबतूता तीस वर्ष तक एशिया और अफ्रिका के भिन्न-भिन्न देशों में घूमता रहा। सब मिलाकर उसने लगभग पचहत्तर हज़ार मील से अधिक की यात्रा की। उस समय संसार-भर में इस्लाम की विजय-दुंदुभी बज रही थी। यूरोप की ईसाई शक्तियाँ उनके आतंक से थरथर काँपती थीं। स्पेन, अफ्रिका, हिन्दुस्तान, फ़ारस,

हिन्द-महासागर के जावा, सुमात्रा आदि द्वीप—सभी कहीं इस्लाम का आधिपत्य था। इस्लाम-धर्म का अनुयायी होने के कारण ही इब्नबतूता इतना सफ़र बिना विशेष कष्ट पाये हुए कर आया।

वह १३२५ ईसवी में यात्रा करने निकला। टेञ्जियर से चलकर वह मिस्र देश के प्रधान नगर क़ाहिरा में आया। वहाँ से वह जेरूसलम, मक्का आदि मुख्य-मुख्य नगरों और तीर्थों की यात्रा करता हुआ फ़ारस देश में पहुँचा। शीराज़, स्फाहान, दमश्क, बग़दाद आदि होता हुआ वह फिर मक्के को लौट गया। उसने दमश्क की बड़ी तारीफ़ की है। उस समय दमश्क था भी एक बड़ा ही सुन्दर नगर। नगर-भर में नहरों और बाग़ों की भरमार थी। वहाँ की जामा-मसजिद उस समय संसार-भर में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। सात सौ हाफ़िज़ केवल कुरान पढ़ने के लिये नियत थे। इसके अतिरिक्त दमश्क उस समय विद्या का केन्द्र था और उदार दान-वीर लोगों का घर हो रहा था।

मक्के में वह तीन वर्ष तक रहा। एक जगह पर उसके कदम बहुत दिनों तक न जमते थे। न-मालूम उसने किस प्रकार ये तीन वर्ष मक्के में काटे। मक्के से अदन होता हुआ वह अफ़्रिका के पूर्वी समुद्र-तट की यात्रा करने लगा। इस यात्रा में उसने जंजीबार, मुम्बासा आदि कितने ही द्वीपों और नगरों की सैर की। अफ़्रिका से वह फिर फ़ारस गया। कुछ दिन उस

देश में घूमकर वह फिर तीसरी बार मक्का गया। मक्के से वह हिन्दुस्तान जाना चाहता था; परन्तु उसे हिन्दुस्तान जानेवाला कोई जहाज़ ही नहीं मिला। लाचार, उसने उस समय भारत-यात्रा का विचार त्याग दिया; परन्तु उससे बैठा न रहा गया। लालसागर पार करके वह मिस्र देश में आया और वहाँ से नील नदी के किनारे-किनारे चलकर फिर काहिरा पहुँचा। कुछ दिन वहाँ आराम करके वह यूरोप के दक्षिण में छोटे-छोटे द्वीपों में घूमता रहा। वहाँ से वह काला-समुद्र को पार करके रूस देश के अन्तर्गत वाल्गा नदी के तट पर पहुँचा। मुहम्मद उज़बक उस समय उस देश का राजा था। उस समय संसार में सात बादशाह बड़े ही शक्तिशाली समझे जाते थे। उज़बक भी उन्हीं सातों में था। उज़बक-वंशवाले दीने-इस्लाम के पाबन्द थे; परन्तु स्त्रियों को परदे में रखने की प्रथा न उनमें थी और न उनकी प्रजा में।

रमज़ान में इब्नबतूता बलगेरिया पहुँचा। यहाँ रात बहुत छोटी होती थी। दिन-भर उसे रोज़ा रखना पड़ता था। वह कहता है कि मग़रिब की नमाज़ पढ़ते ही इशा की नमाज़ का वक्त आ जाता था—अर्थात् रात बीत जाती थी। इस यात्रा में वह उज़बक बादशाह से भी मिला। बादशाह ने उसका बड़ा आदर किया और अपने पास ठहरा लिया। बादशाह के कई बेगमें थीं। प्रधाना

बेगम कुस्तुनतुनिया के ईसाई बादशाह की बेटी थी। वह उस समय गर्भवती थी। उसने बादशाह से अपने पिता के यहाँ जाने की आज्ञा चाही और आज्ञा मिल गयी। बादशाह की आज्ञा से इब्नबतूता भी बेगम के साथ हो लिया। कुस्तुनतुनिया में उसका बड़ा सत्कार हुआ और बादशाह से मुलाकात होने पर उसे बहुत इनाम मिला। वहाँ वह एक महीना छः दिन रहा; तथापि वह इस यात्रा से खुश न हुआ। ईसाई गिरजों के घंटों का नाद उसे बहुत ही नापसन्द था। एक बात और भी थी, उज़बक बादशाह की जिस बेगम के साथ बतूता वहाँ गया था, वह अपने पिता के पास पहुँचकर सुअर का मांस खाने और शराब पीने लगी। उसका यह आचरण इब्नबतूता को बहुत ही बुरा लगा। जब इब्नबतूता और उसके साथी ने देखा कि बेगम अपने पति के पास अब नहीं जाना चाहती, तब ये लोग उज़बक के पास लौट आये।

इसके बाद वह हिन्दुस्तान की ओर चला। रास्ते में जो-जो नगर पड़े, उनमें ठहरता हुआ उस पर्वत पर पहुँचा, जिसे आजकल 'हिन्दूकुश' कहते हैं। उसने लिखा है कि इस पर्वत को 'हिन्दू-कुश' इसलिये कहते हैं, कि जो गुलाम हिन्दुस्तान से पकड़कर लाये जाते थे, वे इस पर्वत के शीत को न सह सकने के कारण मर जाते थे। हिन्दूकुश के निकट बशाई नाम के एक पहाड़ पर उसे

एक बूढ़ा आदमी मिला। उसने बतलाया कि मेरी उम्र इस समय ३५० वर्ष की है! प्रत्येक शताब्दी के समाप्त होने पर मेरे दाँत और बाल नये हो जाते हैं।

इब्नबतूता को उस वृद्ध की बातों पर विश्वास न हुआ। वहाँ से वह काबुल होता हुआ १३३२ ईसवी के मुहर्रम के महीने में पंजाब पहुँचा।

उस समय हिन्दुस्तान में मुहम्मद तुग़लक़ बादशाह था। देश में शांति नाम को भी न थी, कोई राजपथ तक सुरक्षित न था, मुसाफ़िर सब कहीं लूट लिये जाते थे, स्थान-स्थान पर उत्पात होते थे, और निर्बलों को सताना ही बलवान अपना कर्तव्य समझते थे। अपनी भारत-यात्रा के विषय में इब्नबतूता ने अपने सफ़रनामे में इस प्रकार लिखा है—

"सिंध हिन्दुस्तान का बड़ा भारी दरिया है। यहाँ डाक प्यादों और सवारों द्वारा लायी और भेजी जाती है। हिन्दुस्तान का कोई मेवा हमारे देश में प्रसिद्ध नहीं है। केवल तरबूज ही एक ऐसा फल है, जो यहाँ भी होता है और वहाँ भी; परन्तु यहाँ का तरबूज बड़ा और मीठा होता है। यहाँ वृक्ष बहुत बड़े-बड़े हैं; परन्तु अपने यहाँ का कोई वृक्ष मुझे दिखाई नहीं पड़ा। एक फल यहाँ का आम है। कच्चा आम खट्टा होता है और उसका अचार पड़ता है। पक्का आम सेब की तरह मीठा

होता है। खिरनी, जामुन, महुआ, बेर आदि कितने ही मेवे यहाँ होते हैं। अंगूर और अनार यहाँ बहुत नहीं होते। खजूर होते ही नहीं। अनाज बहुत किस्म के होते हैं। यहाँ के निवासी अधिकतर काफिर या बुतपरस्त हैं। उनमें जो इस्लामी शासन के अधीन नगरों और गाँवों में बसते हैं, वे शांतिप्रिय हैं; परन्तु जो पहाड़ों पर रहते हैं, वे लूट-मार करते हैं। इन लोगों में मृत पति के साथ स्त्रियाँ जल जाती हैं। जब पति मरता है, तब स्त्री शृंगार करती है, ब्राह्मण और अन्य लोग बाजा बजाते हैं और जिस आग में मृत पति जलाया जाता है, उसी में स्त्री भी जा गिरती है। दोनों थोड़ी देर में राख हो जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सब विधवाएँ अपने पति की लाश के साथ जलें; परन्तु यह प्रथा यहाँ बहुत अच्छी समझी जाती है। जिस घर की कोई स्त्री इस प्रकार जल जाती है, उस घर का लोग बड़ा आदर करते हैं। जो विधवा नहीं जलती, उसे मोटे कपड़े पहनकर अपना सारा जीवन अपने संबन्धियों के साथ बिताना पड़ता है। जलने के पहले स्त्री खूब खुश हो-होकर हँसती, बोलती और नाचती है।

" हिन्दू लोग जलाये गये मुर्दों की राख गंगा में फेंक देते हैं। बहुत-से हिन्दू गंगा में जान-बूझकर खुद ही डूब जाते हैं। जो डूबना चाहता है, वह किसी संबन्धी को बुलाकर कहता है—यह मत समझना कि मैं गंगा में किसी सांसारिक इच्छा को पूर्ण करने

को डूबता हूँ। नहीं, मेरा मतलब केवल यही है कि मैं भगवान के पास पहुँच जाऊँ।

"देहली हिन्दुस्तान की राजधानी है। संसार के इस्लामी राज्यों में कहीं भी इतना बड़ा शहर नहीं है। कैसी अच्छी शहर-पनाह देहली के चारों तरफ़ है, वैसी अच्छी शहर-पनाह शायद ही दुनिया के किसी शहर की हो। शहर-पनाह की दीवार ग्यारह गज़ चौड़ी है। उसके ऊपर ठौर-ठौर पर आड़ की जगहें बनी हुई हैं, जिसमें शहर-पनाह की रक्षा करनेवाले सिपाही रहते हैं। दीवार के अन्दर कितने ही सिलहखाने हैं। किले में गल्ला भी बेहद भरा हुआ है। ग़ल्ला ज़मीन में गड़ा रहता है; परन्तु खराब नहीं होता। बादशाह बलबन के समय के—लगभग ९० वर्ष के पुराने गड़े हुए चावल मैंने देखे। रंग उनका कुछ मैला तो अवश्य हो गया था; पर स्वाद उनका वैसा ही था। दीवार के नीचे का भाग पत्थर का है और ऊपरी भाग ईंट और चूने का। दीवार पर दो सवार बड़ी अच्छी तरह दौड़ सकते हैं; परन्तु बाहरवाले भाग पर नहीं। इसका कारण यह है कि दीवार पर भी जाने-आने का रास्ता छोड़कर बाहर की तरफ़ एक छोटी चहारदीवारी बना दी गयी है। शहर-पनाह में बाहर आने-जाने के लिये २८ फाटक हैं।

"देहली की जामा-मसजिद भी अपने ढंग की एक ही है।

पहले वह काफ़िरों की परिस्तानगाह थी। वह संगमर्मर की बनी हुई है; लकड़ी और मामूली पत्थर का कहीं नाम नहीं। बीच मसजिद में तीन गज़ लंबा एक स्तंभ है। कहते हैं, वह सात धातुओं को मिलाकर बनाया गया है और किसी शस्त्र से काटा नहीं जा सकता। मसजिद की एक मीनार बहुत ही ऊँची है। वह सुर्ख पत्थर की बनी हुई है। उसके ऊपर चढ़ने की सीढ़ियाँ इतनी चौड़ी हैं कि हाथी भी उन पर चढ़ सकता है।

"शहर के बाहर एक बड़ा भारी हौज़ है। वह दो मील लंबा और एक मील चौड़ा है। उससे भी बड़ा एक हौज़ है। देहली से जो सड़कें और नगरों को जाती हैं, उनके दोनों तरफ़ इतने वृक्ष हैं कि सदा छाया रहती है। उन पर तीन-तीन मील पर सरायें बनी हुई हैं, जिनमें मुसाफ़िर ठहरते हैं।

"हम लोगों के आने का समाचार बादशाह मुहम्मद तुग़लक को मिल गया था। उसने अपने कर्मचारियों को आज्ञा दे दी थी कि हमें किसी तरह की तकलीफ़ न होने पावे। देहली पहुँचकर हम वज़ीर और क़ाज़ी के साथ राज-माता को सलाम करने गये। राज-माता ने हमारा अच्छा स्वागत किया और हमारे ठहरने और भोजन का उचित प्रबन्ध करवा दिया। हर रोज़ प्रातःकाल हम वज़ीर को सलाम करने जाते थे। एक दिन उसने मुझे दो हज़ार दीनार दिये और कहा कि यह आपके कपड़ों की धुलायी है। इसके

अलावे उसने मुझे एक बहुमूल्य चोग़ा और मेरे नौकरों को, जो लगभग चालीस थे, दो हज़ार दीनार दिये। उस समय बादशाह कहीं बाहर गये हुए थे; परन्तु उनकी कृपा से हम लोगों के आराम में कोई विघ्न न पड़ा। इस बीच मेरी लड़की का देहान्त हो गया। वज़ीर ने उसकी अन्त्येष्टि क्रिया का सब खर्च सरकारी खज़ाने से दिया।

"हमारे देहली पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद समाचार मिला कि बादशाह राजधानी को लौट रहे हैं। हम लोग नज़रें ले-लेकर सात मील आगे बढ़कर बादशाह से मिलने गये। बादशाह ने मेरा और मेरे साथियों का खूब सत्कार किया और सबको खिलअतें दीं। देहली पहुँचकर बादशाह ने हममें से हर मुसाफ़िर को योग्यतानुसार एक-एक पद पर नियत कर दिया। मुझे देहली के काज़ी का पद मिला। मेरी तनख़्वाह बारह हज़ार रुपये साल नियत हुई। इसके सिवा बारह हज़ार की जागीर भी मिली। मैं हिन्दुस्तान की ज़बान बिल्कुल न समझता था; इसलिये बादशाह ने मेरे दो नायब नियत किये, जो मुझे हर बात में सहायता दें।

"मुहम्मद तुग़लक बड़ा ही उदार और दयालु बादशाह है; परन्तु साथ ही जिद्दी भी परले सिरे का। ज़रा-ज़रा-सी बात पर ज़िद कर बैठता है। ज़िद में आकर कभी-कभी वह बड़े कठोर काम कर डालता है। कुछ बाग़ियों ने देहलीवालों को बादशाह के

विरुद्ध भड़का दिया। फल यह हुआ कि बादशाह ने हुक्म दे दिया कि देहली खाली कर दी जाय। यदि कोई आदमी नगर के किसी मकान में पाया गया तो उसे प्राण-दण्ड दिया जायेगा। लोग अपने-अपने घर छोड़कर भाग गये। केवल दो आदमी, जिनमें एक अन्धा था, एक घर में छिप रहे। शाही नौकरों ने उन्हें ढूँढ़ निकाला। जो अन्धा था, उसे देहली से दौलताबाद तक घसीटे जाने का हुक्म दिया और दूसरे को एक ऊँची छत पर से गिरा दिया जाने का। कोई-न-कोई घटना इस तरह की हुआ ही करती है। कभी कोई शेख अपनी जान खोता है और कभी कोई अमीर हाथी के पैरों में बँधवाकर मारा जाता है।

"यद्यपि बादशाह मुझ पर बड़ी कृपा करता था; परन्तु मैं प्रतिदिन होनेवाले इन अत्याचारों को न देख सकता था। इधर हिन्दुस्तान में रहते मुझे बरसों हो गये थे; इसलिये घूमने के लिये मेरा जी ललचा रहा था। मेरा खर्च भी बहुत बढ़ गया था। पचपन हज़ार रुपये का तो मेरे ऊपर कर्ज़ हो गया था। इसी बीच एक दुर्घटना हो गयी। बादशाह ने एक शेख पर नाराज़ होकर उसे क़ैद कर लिया। शेख के मिलने-जुलनेवाले भी पकड़े जाने लगे। मैं भी उससे मिलता था; इसलिये दूसरों के साथ मुझे भी बादशाह के सामने हाज़िर होना पड़ा। औरों को तो फाँसी दे दी गयी; परन्तु मैं छोड़ दिया गया। छूटते ही मैंने

अपने काम से इस्तीफ़ा दे दिया और अपना सब माल-असबाब फ़क़ीरों को बाँटकर फ़क़ीरी वेष धारण कर लिया।

"इसी समय चीन के सम्राट् ने बादशाह मुहम्मद के पास कुछ सौगातें भेजीं। मैं जब फ़क़ीरी वेष में बादशाह से मुलाकात करने गया, तो उसने पहले से भी अधिक मेरा सत्कार किया। उसने कहा—'मैं जानता हूँ कि तुम सफ़र को बहुत पसन्द करते हो। अच्छा, तुम मेरे एल्ची बनकर चीन जाओ और मेरी तरफ़ से चीन के सम्राट के पास सौगातें ले जाओ।' मैंने इस काम को स्वीकार किया। मैं बादशाह की तरफ़ से सौगातें लेकर चीन के आये हुए एल्ची के साथ देहली से चल पड़ा। रास्ते में हिन्दुओं ने हम लोगों पर डाका डाला। हम सब भागकर तितर-बितर हो गये। मैं अकेला रह गया। सात दिनों तक जंगली फलों और पत्तों को खाता मैं चला गया। एक दिन कमज़ोरी के कारण बेहोश होकर सड़क पर गिर पड़ा। जो आँखें खुलीं तो मैंने अपने को शाही सिपाहियों के बीच पाया। मैं बाद-शाह के पास पहुँचाया गया। वह मेरे लुटे जाने का हाल सुन चुका था। मुझे बारह हज़ार रुपये देकर कुछ आदमियों के साथ उसने फिर रवाना किया।

"रास्ते में हम लोग 'जोगियों' से मिले। ये जोगी ज़मीन के नीचे अपना मकान बनाते हैं। हवा आने के

केवल ज़रा-सा छेद रहता है। ये महीनों कुछ नहीं खाते। मैंने सुना है कि एक जोगी ने साल-भर तक कुछ नहीं खाया। बादशाह जोगियों को बहुत पसन्द करता है। वह उनकी सोहबत में भी बैठता है। जोगी लोग केवल एक बार देखकर ही आदमी को मार डालते हैं। एक दिन मैं बादशाह के पास बैठा था कि दो जोगी आये। बादशाह ने उनका बड़ा आदर किया और मेरी तरफ़ इशारा करके उनसे कहा—'यह मुसाफ़िर है, इसे कोई करामात दिखलाइये।' एक जोगी उठा और आकाश में उड़ गया। मैं इस विचित्र लीला को देखकर बेहोश हो गया। जब मैं होश में आया, तो देखा कि जोगी उसी प्रकार हवा में उड़ रहा है। इतने में दूसरा जोगी उठा और चन्दन का एक टुकड़ा ज़मीन में मारकर वह भी उसी तरह हवा में उड़ने लगा। जब मैं बहुत घबड़ा गया, तब बादशाह ने जोगियों के इस खेल को बंद करवा दिया।

"चलते-चलते हम लोग सिन्धुपुर नामके द्वीप में पहुँचे। इसमें एक बड़ा भारी तालाब और एक मन्दिर है। मैं मंदिर के पास पहुँचा तो देखता क्या हूँ कि एक जोगी दो मूर्तियों के बीच में बैठा है। मैंने उसे बुलाया; पर वह न बोला। मैंने इधर-उधर देखा; पर कोई खाद्य पदार्थ मुझे न दिखायी पड़ा। मैं देख ही रहा था कि वह एकाएक लुढ़का और एक नारियल का फल, उस वृक्ष से जो उसके सामने ही था, नीचे गिर पड़ा। वह

नारियल उसने मेरी तरफ़ फेंक दिया। मैंने उसे कुछ रुपये देना चाहा; पर उसने तुरन्त मुझे अपने रुपयों से दस रुपया अधिक दे दिया। मैं उसे मुसलमान समझता हूँ, क्योंकि जब मैंने उसे बुलाया तो पहले उसने आकाश की तरफ़ इशारा किया और फिर मक्का की तरफ़।

"यहाँ से हम लोग मलाबार पहुँचे। यहाँ सड़कों पर आधे-आधे मील पर मुसाफिरखाने हैं। इन मुसाफिरखानों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—सभी ठहर सकते हैं। कुएँ पर पानी पिलानेवाला बैठा रहता है, जो हिन्दुओं को पात्र में और मुसलमानों को चुल्लू में पानी पिलाता है। इस राज्य में मैंने दो मास तक सफ़र किया; पर कहीं ज़रा-सी भी ज़मीन बिना जोती न मिली। व्यापारी लोग लादने का काम कुलियों से लेते थे। चोरों को यहाँ प्राणदण्ड दिया जाता था; इसलिये यहाँ चोरी नहीं होती थी। इस देश में काली मिर्च बहुत होती है।

"देली और पट्टन होते हुए हम लोग कालीकट पहुँचे। यहाँ से चीन को जहाज़ जाते हैं। प्रत्येक जहाज में छः सौ मल्लाह और चार सौ नौकर काम करते हैं। बड़े जहाज़ के साथ तीन छोटे-छोटे जहाज़ भी होते हैं। जहाज़ बड़े-बड़े शहतीरों के डाँड़ों से खेये जाते हैं। कर्मचारियों के रहने के लिये वहाँ लकड़ी के घर भी बने रहते हैं।

"हम लोग चीनवाले जहाज़ पर सवार हुए; पर दुर्भाग्यवश चलते ही तूफ़ान आ गया और जहाज़ टूट फूट गया। मेरे सब साथी समुद्र में डूब गये, केवल मैं बच गया। अन्त को घूमते-घूमते मैं मालद्वीप पहुँचा।"

यहाँ से इब्नबतूता की भारत-यात्रा समाप्त होती है। मालद्वीप में उस समय स्त्री-राज्य था। उसे वहाँ क़ाज़ी का पद मिल गया। वहाँ एक वर्ष रहा और चार स्त्रियों से शादी की। थोड़े ही दिन बाद वह उन स्त्रियों को तिलाक देकर सिलोन को चलता बना। वहाँ बाबा आदम के पद-चिह्न के दर्शन किये। फिर दक्षिण भारत घूमता हुआ चटगाँव पहुँचा और वहाँ से जहाज़ द्वारा चीन गया। रास्ते में जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों की भी सैर करता गया। वह चीनियों की शिल्पकला देखकर दंग रह गया। उसने वहाँ की राज्यपद्धति की प्रशंसा की है। देश-भर में डाकुओं और चोरों का नाम न था। उसके चीन पहुँचने के थोड़े दिन बाद वहाँ एक बड़ा राजविप्लव हुआ। उसमें चीन का बादशाह मारा गया। देश की अशान्ति देख इब्नबतूता वहाँ से चलता बना और कई द्वीपों को देखते हुए बीस वर्ष बाद अरब पहुँचा। मक्का आदि तीर्थों में ठहरता हुआ वह १३४९ ईसवी के अन्त में सकुशल स्वदेश को लौट गया।

१३५२ ई० में वह फिर यात्रा के लिये निकला था। दो

वर्ष तक मध्य अफ्रिका की सैर कर, बाद को स्वदेश लौट गया। ७३ वर्ष की उम्र में इस बड़े यात्री की जीवन-यात्रा समाप्त हो गयी।

कठिन शब्दों के अर्थ

दुंदुभी - नगाड़ा धौंसा।
मग़रिब - पच्छिम।
बेगम - रानी।
उत्पात - उपद्रव।
काफिर - खुदा पर विश्वास न रखनेवाला।
बुतपरस्त - मूर्ति-पूजक।
शहर-पनाह - कोट, चहारदीवारी।
सौगात - नज़र, भेंट।
शहतीर - लकड़ी का लम्बा, लट्ठा।
राजविप्लव - ग़दर।

एक ही कब्र में

(एकांकी नाटक)

श्री उदयशंकर भट्ट

[श्री उदयशंकर भट्ट नये नाटककार हैं। आपने कई नाटक तथा काव्य लिखे हैं। आपकी लिखी कुछ कहानियाँ भी हैं। इधर आपने अच्छे एकांकी नाटक लिखे हैं। आप यू. पी. के रहने वाले हैं। आजकल आप लाहौर में हिन्दी-अध्यापक का काम कर रहे हैं। आपकी भाषा चलती हुई हिन्दुस्तानी शैली की होती है।]

पहला दृश्य

(छः बजे शाम का समय)

[क्वेटा नगर में सड़क के किनारे दुमंजिला मकान। नीचे के कमरे में दोस्त नसीरुद्दीन और मुहम्मद अकरम अभी क्लब से टेनिस खेलकर लौटे हैं। पी चुकने के बाद चाय का खाली सामान रखा है। आमने-सामने आराम-कुर्सियों पर दोनों गुम-सुम बैठे हैं; ऐसा मालूम होता है, किसी बात पर झगड़ा हो चुका है।]

नसीर—आखिर इतनी फिक्र किस बात की? बल्कि मैं तो कहता हूँ, तुम आजकल के मुस्लिम पालिटिक्स को कुछ समझते ही नहीं।

मुहम्मद—इस मुस्लिम पालिटिक्स को न समझना ही अच्छा।

नसीर—तो क्या तुम इस प्लेज पर दस्तखत करने से इनकार करते हो?

मुह०—क़तई! मैं मुसलमान हूँ; मगर दूसरों से मुझे नफरत नहीं है। हम दोनों एक ही मुल्क के रहनेवाले हैं। हमारा उनका चोली-दामन का साथ है। तुम चाहते हो, मैं आज फार्म पर दस्तखत करके आज से सुदेसी की जगह विलायती और हिन्दू के बजाय मुसलमान से ही सौदा खरीदा करूँ! यह मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं इस खयाल को मुल्क के लिये मौत का बिगुल समझता हूँ।

नसीर—तुम्हें मालूम होना चाहिये कि 'कम्यूनल एवार्ड' के ज़रिये सरकार ने हम पर मेहरबानी की है। उसने हमें एहसान-मन्द बना लिया है।

मुह०—लेकिन क्या एक क़ौम का पेट भर जाने, या एक जाति के खुशहाल हो जाने से हमारी बेचैनी दूर हो जायगी?

नसीर—अम्याँ, तुम पूरे गावदी हो। इससे हमें क्या सरोकार कि दूसरों को फायदा होगा या नहीं? हमारा फायदा तो है।

मुह०—मैं ऐसे फायदे पर लानत भेजता हूँ।

नसीर—और मैं तुम्हारे जैसे प्रो-हिन्दू मुसलमान पर!

मुह०—साफ़ बात तो यह है कि मैं इस बात को नहीं मानता।

नसीर—उस दिन एक मौलाना से बातचीत हो रही थी, उन्होंने इसी सिलसिले में फर्माया कि, "हिन्दुस्तान का मुसलमान 'अपरच्यूनिस्ट' है। उसको इस मौके से फायदा उठाना चाहिये। मुसलमानों की जब तक हुकूमत नहीं होती, तब तक उन्हें हिन्दुस्तान से कोई मुहब्बत नहीं। और इस वक्त हमने अपने को न सँभाला तो हिन्दू बाजी ले जायेंगे।"

मुह०—अरे मियाँ, इन बातों में क्या धरा है? जब तुम्हें अपने मुल्क से मुहब्बत नहीं, तब तुम कुछ भी नहीं कर सकते। ऐसे मौलानाओं ने ही हमारे मुल्क को गुलाम बनाया है। अव्वल तो मैं यह समझता हूँ कि यह ख़याल ही नापाक है, और मान भी लिया जाय तो क्या हमारे यहाँ के जुलाहे खद्दर नहीं बनाते? अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। असलियत तो यह है कि हम मुसलमान और हिन्दू मिलकर हिन्दुस्तान को चमन बनायें। हिन्दू इतने खराब और कमीने नहीं हैं कि हमारे दिल खोलकर मिलने पर वे हमसे न मिलें। आज जो सुराज की लड़ाई हो रही है, उसमें अगर कुछ तियाँ-पाँचा हुआ तो क्या हिन्दुओं के हाथ में हुकूमत की बागडोर होगी? यह नामुमकिन है। हिन्दू अपने धरम के लिये नहीं, देस के लिये लड़ रहे हैं। वे चाहते हैं, जिस तरह हम देस के लिये बेचैन हैं, इसी तरह मुसलमान भाई भी बेदारी हासिल करें, इस मुल्क को अपना

मुल्क समझें। क्या दो बिरादर एक घर में बैठकर आपस में बाँटकर नहीं खा सकते?

नसीर—मुहम्मद, मुझे तुम्हारी ये बातें बिलकुल नापसंद हैं! तुम दीन के दुश्मन हो। (मेज पर हाथ पटककर) मैं साफ़ कहता हूँ—हिन्दू मुसलमान मिल नहीं सकते। हम लोग हिन्दुस्तान में दाँतों के बीच जीभ की तरह रहते हैं। ज़रा ग़फ़लत हो तो हिन्दू हमें खा जायँगे। अब सरकार चाहती है कि हम उसका साथ दें। लीडराने-क़ौम भी यही कहते हैं। तुम बदकिस्मत हो, जो मुसलमानों की तरक्की नहीं चाहते। मैं कभी हिन्दू-मुसलमानों के एक होने का हामी नहीं।

मुह०—(उठते हुए) लेकिन मैं कभी इसे तरक्की नहीं कहता। यह तो गिरावट की निशानी है। जाता हूँ। सलाम!

(बाहर से आवाज सुनाई देती है। एक नौकर दौड़ता हुआ अन्दर आता है।)

नौकर—जनाब बाहर एक आदमी खड़ा (मुहम्मद अकरम की ओर इशारा करता है) आपको बुला रहा है।

मुह०—कौन है? अन्दर बुला लाओ।

(नौकर बाहर जाता है। वह आदमी अन्दर आता है। उर्दू के फार्म छिपा दिये जाते हैं।)

नया आदमी—ओहो! आप यहाँ बैठे हैं? घर पर इंतज़ार करते-करते मेरे बाल पक गये।

मुह०—माफ़ कीजिये, मुझे ज़रा काम लग गया। भाई नसीर, क्या तुम जानते हो, ये ही मेरे दोस्त ज्ञानचंद हैं?

नसीर—(तपाक से हाथ बढ़ाकर) आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।

ज्ञान०—बड़ी दया। भाई मुहम्मद की बदौलत आपसे मुलाकात हुई। इनके घर पर मालूम हुआ कि शायद ये आपके मकान पर ही होंगे; इसीलिये इनके नौकर के साथ हो लिया।

मुह०—सुनाओ, क्या खबर है?

ज्ञान०—खबर क्या है? आज मेवामण्डी के कुछ मुसलमानों से बातचीत हुई। वाकई म्युनिसिपैलिटी ने उन बेचारों पर बड़ा जुल्म किया है। मैंने मुनासिब समझा कि एक्ज़िक्यूटिव आफिसर से खुद मिला जाय; इसीलिये मैंने तुम्हें कोर्ट में टेलीफ़ोन किया था।

नसीर—क्या बात है, मैं सुन सकता हूँ?

ज्ञान०—बात कुछ भी नहीं, और है भी। इधर म्युनिसिपैलिटी ने मेवामण्डी के दुकानदारों पर टैक्स ज्यादा बढ़ा दिया है। उनमें अधिकतर वे लोग हैं, जो गरीब हैं और हर रोज़ अपनी रोटी कमाकर पेट भरनेवाले हैं। उस दिन भाई मुहम्मद

से बात हुई थी; पर ये कुछ सुनें तब न? इन्हें गोशाला के चन्दा जमा करने की पड़ी हुई है। मैं मानता हूँ, क्वेटा की गोशाला का भी ध्यान रखना चाहिये; लेकिन मेवामण्डी के उन गरीब दुकानदारों का भी तो खयाल करना ही चाहिये।

(बाहर से आवाज सुनायी देती है।)

नसीर—अरे, बाहर कोई है! (नौकर 'जी हुजूर' कहता हुआ आता है) देखो, बाहर कौन है?

(नौकर बाहर से लौटकर)

नौकर—सरकार, दो आदमी इन बाबू साहब को बुला रहे हैं।

ज्ञान०—मुझे?

नौकर—जी हाँ!

ज्ञान०—शायद इसी मेवामण्डी के सिलसिले में आये होंगे। ख़ैर, उन्हें अन्दर बुला लो।

नसीर—हाँ, बुला लो, क्या हर्ज है। (दोनों आदमी आते हैं और सलाम करके एक तरफ़ खड़े हो जाते हैं।) आओ बिरादर, बैठो। इधर खाट पर आ जाओ।

(वे दोनों नसीरुद्दीन की ओर घूर-घूरकर देखते हैं, और खाट पर बैठ जाते हैं।)

ज्ञान०—अच्छा, तुम आ गये ?

दोनों—हाँ साहब, आपकी तलाश में हमने ज़मीन-आसमान एक कर दिया। चलिये।

ज्ञान०—हाँ, चलता हूँ। इस खब्ती भाई को साथ ले लूँ; इसीलिये यहाँ आया था।

नसीर—(अपने मन में) क्या मैं सपना देख रहा हूँ ? ये भी अजीब आदमी हैं। इधर ये लाला हैं, जो इन मुसलमान दुकानदारों को सिर-आँखों पर चढ़ाये फिरते हैं, उधर मुहम्मद गोशाला के पीछे पागल हो रहा है। एक हम हैं, जो दोनों को अलग करना चाहते हैं। ये दोनों पागल मालूम होते हैं।

ज्ञान०—(नसीर से) इजाज़त दीजिये तो ज़रा इन लोगों का कुछ काम कर आऊँ। (मुहम्मद से) चलोगे भी या अभी कुछ चाय-वाय फिर पीने का इरादा है ?

मुह०—हाँ, चलता हूँ। तुम्हारे मारे कहीं चैन से बैठ पाऊँ तब न ! (नसीर से) इन मियाँ (ज्ञानचंद) ने नाक में दम कर रखा है। सचमुच आज-कल तो टेनिस भी फुर्सत से नहीं खेल पाता, चलो।

(सब जाते हैं)

पर्दा गिरता है

दूसरा दृश्य

(चार बजे शाम का समय)

[मियाँ मुहम्मद अकरम, लाला ज्ञानचन्द और मुसलमान फल बेचनेवाले म्युनिसिपल एक्ज़िक्यूटिव आफ़िसर की कोठी के बाहर लॉन में कुर्सियों पर बैठे हैं। आफिसर साहब का इन्तजार है, जो अभी भीतर से नहीं आये हैं।]

एक दुकानदार—इस म्युनिसिपैलिटी ने जैसा तंग किया है, उससे तो नाक में दम आ गया है। भला हो इन लाला का, जिन्होंने अपने आप दौड़-धूप करके हमारी सुनवाई का इन्तजाम........

दूसरा—इसमें क्या शक है; लेकिन तू भी बड़ा चालाक है। सवेरे अंगूरों में अठन्नी कमा ही ली। यह भी न समझा कि ये बेचारे हमारे लिये कितनी मुसीबत उठा रहे हैं। नालायक कहीं का।

तीसरा—बड़ा पाजी है, मैं इसकी नस-नस से वाकिफ़ हूँ।

चौथा—आखिर इसमें बुराई क्या है? यह बेचने के लिये ही तो बैठा था, खैरात बाँटने तो नहीं बैठा था!

दूसरा—लो, और सुनो! एक और आये वकालत करने।

तीसरा—चोर का गवाह गिरहकटा! अरे मियाँ, मैं तो ऐसे आदमी को पीर समझता हूँ। आजकल सुनता कौन है

किसी की? उस नसीर को देखा न? वे हज़रत हमसे कह रहे थे कि मुसलमान से सौदा खरीदा करो। मैंने साफ़ जवाब दे दिया कि मुझसे ऐसा न हो सकेगा! आखिर इतने तरद्दुद की क्या जरूरत है? हिन्दू और मुसलमान कौन दो हैं?

ज्ञान०—(पास जाकर) क्या बातें हो रही हैं, सुनूँ तो?

सब—कुछ नहीं, जरा यों ही चकल्लस चल रही थी।

मुह०—(पास जाकर ज्ञानचन्द से) यार, तुम गोशाले के लिये कुछ भी मदद न दोगे?

ज्ञान०—देंगे क्यों नहीं; पर जरा यह काम निपट जाय।

(इतने में एक्ज़िक्यूटिव आफ़िसर बाहर निकलते हैं। सब लोग खड़े हो जाते हैं। उन दोनों से हाथ मिलाकर और बाकी लोगों की तरफ़ मामूली सलाम करके बैठ जाते हैं।)

अफसर—कहिये, यह कैसा मजमा है?

ज्ञान०—(आगे बढ़कर) यों ही आपसे कुछ प्रार्थना थी।

अफसर—हाँ-हाँ, कहिये। मुझसे जो कुछ........।

ज्ञान०—बात यह है कि कमेटी ने इन बेचारे फलवालों के लिये न तो कोई बैठने के लिये जगह बनवायी है और न इन्हें कोई सहूलियत ही दी है। उलटे इन पर टैक्स लगा दिया है। आठ-दस आने रोज़ के मज़दूर हैं। इतना टैक्स कैसे दे सकते

हैं? इसीलिये आपसे दरख़्वास्त थी कि इनके मामले पर फिर से गौर किया जाय।

अफ़सर—लेकिन ये लोग कमेटी की जगह तो इस्तेमाल करते हैं न?

ज्ञान०—यह ठीक है। गरीबी का भी तो कुछ खयाल होना चाहिये।

अफसर—यह कमेटी का फैसला है साहब! इसमें तबदीली नामुमकिन है।

सब—हम गरीब हैं हुजूर! इतना किराया नहीं दे सकते।

ज्ञान०—ये लोग मेरी दुकान के पास बैठते हैं। मैं जानता हूँ, इनकी क्या हालत है। अव्वल तो इन्हें सिपाही तंग करते रहते हैं, फिर कमेटीवाले दारोगा बात-बात में इनका चालान कर देते हैं। शायद ही कोई दिन ऐसा होता हो कि इन्हें किसी-न-किसी मुसीबत का सामना न करना पड़ता हो।

अफसर—लेकिन कमेटी इसमें क्या कर सकती है? मैं क्या कर सकता हूँ? डिप्टी कमिश्नर साहब से दरख़्वास्त कीजिये। मैं कुछ नहीं जानता।

ज्ञान०—(जोर से) हमारी तो आप ही तक पहुँच है। पिछले दिनों इसी तरह का मामला था। हमने डिप्टी कमिश्नर साहब से कहा था। उन्होंने सूखा जवाब दे दिया।

अफसर—सुनिये साहब, यह घर का मामला तो है नहीं। सरकारी मामला है। कोई कुछ भी नहीं कर सकता। अच्छा, मुझे जरा टेनिस खेलने जाना है। (उठते हुए) आपको इन लोगों का ख़याल है तो आप कमेटी की तरफ़ से चबूतरे बनवा दीजिये। मैं मंजूरी दिलवा दूँगा।

मुह०—कमेटी फिर किसलिये है, वह किस मर्ज़ की दवा है? किराया तो वह ले और चबूतरे हम बनवाते फिरें। क्या ख़ूब? यह जुल्म नहीं तो क्या है? आपको टेनिस खेलने जाना है, इधर ये लोग भूख के मारे जान पर खेल रहे हैं।

ज्ञान०—हाँ, बनवा दूँगा। आप लिख दीजिये कि कमेटी इनसे फिर किराया न लेगी।

अफसर—(घूरकर) आप मेरी बेइज़्ज़ती करने आये हैं? जाइये, मैं कुछ नहीं सुनना चाहता।

(उठकर चल देता है, सब लोग धीरे-धीरे उठकर)

सब—कुछ नहीं बन सकता! ये बड़े-बड़े लोग नीचे नहीं देखते। आसमान की तरफ़ देखकर चलते हैं।

(सब धीरे-धीरे चलने लगते हैं।)

ज्ञान०—(एक फलवाले से) लो फैज़, कल ही न तुम्हें किराया देना है, ये लो पाँच रुपये। (निकालकर देता है) कल का किराया तो चुकाओ। और किसे कल किराया देना है?

एक—इस अमजद को भी तो! इस बेचारे का तो बुरा हाल है। कल से घर में रोटी ही नहीं पकी।

ज्ञान०—(दस रुपये का नोट निकालकर) लो अमजद, तुम भी लो। फ़िलहाल काम चलाओ। फिर देखा जायगा।

(वे सब लोग सलाम करके आगे बढ़ जाते हैं।)

मुह०—(ज्ञानचन्द से धीरे से) क्यों, खैरात बाँट रहे हो? इन लोगों पर ज़्यादा यकीन नहीं करना चाहिये। (मन में) यह आदमी है, या देवता!

ज्ञान०—अरे यार, क्या बताऊँ! मुझसे इनकी रोज़-रोज़ की मुसीबतें नहीं देखी जातीं।

मुह—तुम्हें मालूम है, मुसलमान हिन्दुओं के बायकाट पर तुले हैं। मियाँ नसीर उस काम के सरगना हैं।

ज्ञान०—(चौंककर) हैं! पर इससे क्या? ये काम ज़रा जोश के हैं, फिर ठीक हो जायँगे।

मुह०—नहीं, मालूम होता है, बड़ी ज़ोर से बायकाट का काम शुरू होगा। और तुम इन्हें रुपये बाँट रहे हो?

ज्ञान०—कुछ पर्वा नहीं मुहम्मद, कुछ पर्वा नहीं! लोगों को यह तजुर्बा करके भी देख लेने दो। काश कि हम हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे को अच्छी तरह समझते! पर मैं तुमसे

कहता हूँ कि हिन्दुस्तान का भला इसी में है कि हिन्दू-मुसलमान एक होकर रहें ।

मुह०—मेरा भी यही ख़याल है। तुम क्या जानो ज्ञानचन्द कि मेरा जी इन मौलवियों और लीडरों से कैसा जलता है। जब भी मुझे ये बातें याद आती हैं तो मैं रातों बिस्तरे पर पड़ा आठ-आठ आँसू रोता हूँ। तुम्हें क्या मालूम !

ज्ञान०—(मुहम्मद से लिपटकर) बस अब मुझे कोई डर नहीं है। मैं अपने महमूद के दिल को चीरकर हिन्दुओं को दिखा दूँगा कि तुम्हें मुसलमानों से कोई डर नहीं है।

मुह०—लेकिन मैं क्या करूँ दोस्त ?

ज्ञान०—शायद कोई ऐसा मौका आ जाय ! अच्छा, जाता हूँ ।

मुह०—अच्छा। (उदास होकर लौटता है)

ज्ञान०—(वहीं सड़क के किनारे खड़ा होकर) यदि हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये आज मेरी जान भी चली जाय, सर्वस्व लुट जाय तो भी मैं सब कुछ दे सकता हूँ। क्या कभी वह दिन आयेगा कि मैं इसी पवित्र उद्देश्य के लिये आत्म-समर्पण कर सकूँगा। वह दिन शुभ दिन होगा। हे ईश्वर, मुझमें बल दो। (इसी ध्यान में मग्न हो जाता है।)

तीसरा दृश्य

(समय—प्रातःकाल)

[उस रात को भूकम्प से तमाम क्वेटा विध्वंस हो गया। हज़ारों आदमी मर गये, दब गये। चारों ओर चीख पुकार मच रही है। उसी समय मियाँ नसीरुद्दीन के मकान के सामने लाला ज्ञानचंद की लाश पड़ी है और उनके पास ही नसीरुद्दीन बेहोशी में पड़ा है। कुछ लोग आसपास खड़े हैं। मुहम्मद अकरम भी वहाँ आ पहुँचा है।]

नसीरुद्दीन—(आँखें खोलकर) ओह, क्या से क्या हो गया! मेरी बीबी कहाँ है? हाय, मेरा लाल कहाँ है?

मुह०—(आँसू बहाते हुए आगे बढ़कर) तुम्हीं नहीं नसीर, सारी दुनिया बरबाद हो गयी। मेरा घर भी तो....(ज़ोर से रोने लगता है) चारों ओर लाशों के ढेर हैं। ख़ुदा को न-मालूम क्या मंजूर है। (इधर-उधर देखकर) अरे, ज्ञानचन्द यह कैसे आ निकला?

नसीर०—हा, ज्ञानचन्द! कुछ न पूछो। मैं इस हालत में पड़ा हूँ। यह इन्हीं लाला ज्ञानचन्द की मेहरबानी है। हा मेरे बच्चे!

मुह०—ज्ञानचन्द यहाँ कैसे नसीर——?

नसीर०—(कुछ देर चुप होकर) क्या बताऊँ मुहम्मद! लाला ज्ञानचन्द भूकम्प के वक्त ठीक मेरे दरवाज़े के सामने थे

जब उन्होंने मकान गिरते देखा, तो अपने साथी के साथ, जो शायद उन्हीं के साथ सिनेमा से लौट रहा था, हमारे घर की हिफ़ाज़त को टूट पड़े। जिस कमरे में मैं और मेरी बीबी और बच्चा सो रहे थे, उस पर ऊपर की छत आ गिरी। हम उसी के नीचे दब गये। उन्होंने सबसे पहले मुझे निकाला। उसके बाद मेरी बीबी को; लेकिन बीबी उस समय तक मर चुकी थी! हाय मेरा बच्चा (रोने लगता है) वह आदमी नहीं, देवता था!....

मुह०—फिर क्या हुआ नसीर? ओह, जब दुनिया अपनी जान लेकर भाग रही थी, उस वक्त........फिर नसीर?

नसीर—ज्ञानचन्द लड़कों को न निकाल सके और वे भी वहीं दब गये। मैंने यह अपनी आँखों देखा; लेकिन मेरा जैसे सब-कुछ खो गया था। मैं जैसे बिलकुल हाथ-पैर खो चुका था मुहम्मद!

मुह०—इतनी हिम्मत, फिर उन्हें किसने निकाला?

नसीर—शायद इनके साथी ने। इन्हें निकालकर बाहर लाते ही उस बेचारे के ऊपर मकान का छज्जा गिर पड़ा और वहीं दब गया। तमाम जिस्म टूट रहा है। मरा जा रहा हूँ। आखिरी दम........(बेहोश हो जाता है)।

मुह०—ठीक! कल उसने कहा था कि शायद कोई ऐसा मौका आ जाय। आज वही मौका है। आज हजारों

मुसल्मान और हिन्दू एक ही क़ब्र के नीचे दबे पड़े हैं। हा——लाला ज्ञानचन्द! क्या तुम इससे अच्छा हिन्दू-मुसलिम मेल का कोई और उदाहरण नहीं दे सकते थे? आज ही नहीं, तुमने सदा से मुसलमानों की हिफाज़त की। उनके लिये लड़े! ऐ खुदा! मुझमें हिम्मत दो कि मैं हिन्दुस्तान में सब हिन्दुओं को ज्ञानचन्द की सूरत में देखूँ।

नसीर——(आँखें खोलकर) ऐ खुदा, मेरे गुनाह माफ़ कर! मैंने इसी बगल में सोते भाई की जात को नफ़रत की नज़र से देखा।........मेरे गुनाह। ऐ खुदा.....! मुझे आज मालूम हुआ.... हा....जान निकल रही है। मेरा गुनाह....माफ़....(जिस्म तोड़ने लगता है और छटपटाकर मर जाता है।)

मुहम्मद——(नसीर की लाश एक ओर रखकर) सब हो चुका। इससे बढ़कर मिसाल और न मिलेगी। (ज्ञानचन्द की लाश से लिपटकर रोने लगता है।) ऐ मेरे हिन्दू भाई! मैं तुझ पर हजारों मुसल्मान कुर्बान....

कठिन शब्दों के अर्थ

गुम-सुम - चुपचाप
पालिटिक्स - राजनीति
प्लेज - प्रतिज्ञापत्र
कतई - बिलकुल
चोलीदामन का साथ - न टूटनेवाला सम्बन्ध
एहसानमन्द - कृतज्ञ
खुशहाल - प्रसन्न, सुखी

गावदी - बेवकूफ़

प्रो-हिन्दू - हिन्दुओं का पक्षपाती

लानत - धिक्कार

सरोकार - सम्बन्ध

सिलसिला - संदर्भ

फर्माया - कहा

अपरच्यूनिस्ट - मौका देखकर काम करनेवाला

हुकूमत - शासन।

अव्वल - पहली बात, प्रथम

नापाक - अपवित्र।

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता- अकेला आदमी कुछ नहीं कर सकता।

चमन - बगीचा।

कमीना - खराब, नीच।

स्वराज - स्वराज्य।

तिया-पांचा - कुछ निश्चय, सन्धि।

बागडोर - सूत्र, रस्सी।

नामुमकिन - असंभव।

बेदारी - जागृति।

बिरादर - भाई।

दीन - धर्म।

गफ़लत - असावधानी।

लीडराने कौम - जाति के नेता।

बदकिस्मत - अभागा।

हामी - समर्थक।

तपाक से - जल्दी।

बदौलत - कारण।

जमीन आसमान एक कर दिया - बहुत कोशिश की।

मेवामण्डी - वह बाजार जहाँ फल बिकते हैं।

सिलसिले में - सम्बन्ध में।

बिरादर - भाई।

घूरकर - बहुत ध्यान से।

खब्ती - पागल।

सिर आँखों पर चढ़ाना - बहुत सम्मान या प्यार करना।

इजाज़त दीजिये - आज्ञा दीजिये। (विदा होने के समय कहा जाता है)।

लॉन - मैदान।

नाक में दम आना - परेशान होना।

दौड़-धूप करना - मेहनत करना।

सुनवाई - सुनना।

वाकिफ़ - जानकार।

खैरात - दान, मुफ्त।

पीर - देवता।

तरद्दुद - चिन्ता, फ़िक्र।

चकल्लस - दिल्लगी।

निपट जाय - हो जाय।

मजमा - भीड़, सभा ।
सहूलियत - सुविधा ।
तब्दीली - परिवर्तन ।
नामुमकिन - असंभव ।
चालान करना - पुलिस में भेजना
मर्ज़ - रोग ।
जान पर खेलना - मरना, मरने को तैयार ।
नीचे नहीं देखते - छोटों को नहीं देखते ।
यकीन - विश्वास ।
मुसीबत - तकलीफ़ ।
सरगना - प्रधान ।
तजुर्बा - अनुभव ।

काश - क्या ही अच्छा होता ।
जी जलना - गुस्सा आना ।
आठ आठ आँसू रोना - खूब रोना
विध्वंस - नष्ट ।
लाश - शव ।
लाल - लड़का ।
बरबाद - नष्ट ।
हिफ़ाजत - रक्षा ।
हाथ पैर खोना - होश-हवास खोना
छज्जा - छत ।
जिस्म - बदन ।
गुनाह - पाप ।
मिसाल - उदाहरण ।
कुर्बान - बलि ।